बाउलः प्रेम लोक के वासी

ओशो के श्री चरणों में समर्पित

मा अमृत प्रिया

जिलाः सोनीपत, हरियाणा 131021

 contact@oshofragrance.org

 www.oshofragrance.org

+91 7988229565
+91 7988969660
+91 7015800931

मा ओशो प्रिया द्वारा टी.वी. चैनल 'आस्था' में बाउल–गीतों पर दिए गए 25 प्रवचनों का अपूर्व संकलन

अनुक्रमांक

हृदय के तीर्थ में बसते हैं बाउल!

बाउल फकीर तो प्रेम लोक के वासी हैं। वे क्रियाकाण्डों में भरोसा नहीं करते, सिद्धांतों और शास्त्रों में नहीं उलझते, वे तो यथार्थ जगत के प्रेम में जीते हैं और हमें भी उसी प्रीतम से जोड़ते हैं। हाँ, सत्य उनके लिए प्रियतम है। जीवन उनके लिए नर्तन है, गायन है। तथाकथित भक्तों को देखकर वे आश्चर्य से कहते हैं– परमात्मा तो सदा, सर्वत्र मौजूद है और आप पुकार में व्यस्त हो, प्रार्थना कर रहे हो! अरे पागलो, उस परम प्रीतम की अनुभूति वर्तमान में होतीं है और आप सदा किन्हीं क्रियाओं में व्यस्त हो। धर्म साधना के नाम पर भी!

वर्तमान में भावपूर्वक, रसमग्न होकर जीना ही बाउलों की मूल जीवन–शैली है। और हम कई तरह से सदा व्यस्तता में उलझे रहते हैं। संसारी संसार में, कर्मयोगी कर्म में और हठयोगी आसन–प्राणायामों में फंसे हैं। भक्तियोगी प्रार्थनाओं में और ज्ञानयोगी विचारों के जंजाल में उलझे हुए हैं। सभी व्यस्त हैं। जब हम अव्यस्त होकर वर्तमान के क्षण में आएंगे तब हम पाएंगे कि वह प्रियतम तो सर्वत्र मौजूद है। बाहर भी हरि, भीतर भी हरि!

परमात्मा को महसूस करना है तो संवेदनशील बनो, इसी जगत में वह मौजूद है। सारा जीवन परमात्मा का ही अवतरण है। फूल खिलते हैं तो परमात्मा ही खिलता है, हवाएं बहती हैं तो परमात्मा ही बह रहा है, सुगंध उड़ती है तो परमात्मा की ही सुगंध है। नदियां बह रही हैं तो परमात्मा ही बह रहा है, वृक्ष बड़ा हो रहा है तो परमात्मा ही बड़ा हो रहा है। हम सर्वत्र परमात्मा की अनुभूति कर सकते हैं अगर हम शांत हो जाएं। बात है संवेदनशील होने की, वर्तमान में प्रेमल और सजग होने की। वर्तमान के क्षण में आ जाओ और उस विराट ऊर्जा की अनुभूति से भर जाओगे।

किसी ने एक फकीर से पूछा कि परमात्मा को कहां खोजें? फकीर ने कहा, परमात्मा को अपने हृदय में, प्रेम–भाव में ही खोजो। परमात्मा गहन प्रेम में मिलेगा। मगर लोग तो प्रेम के नाम पर भी व्यस्त हैं, प्रेम और भक्ति के नाम पर भी न जाने कौन–कौन से क्रियाकाण्डों में लग जाते हैं। जब हम इस जगत के प्रेम में पड़ते हैं तो हम पाते हैं कि परमात्मा मौजूद है, अभी और यहीं।

एक बाउल फकीर गाता है–

कौतो जोन जौपे माला तुलशी–तौला, हाते झोले मालार झोला।
आर कौतोजोन होरि बोलि मारे ताली, नेचे गेये हौय मातेला।।

कितने लोग तुलसी की माला जपते हैं, हाथ झोले में छुपाकर! और कितने लोग हरि–हरि गाते हुए ताली बजाते हैं, दीवाने होकर नाचते हैं लेकिन बाउल कहते हैं कि इससे भी परमात्मा नहीं मिलेगा। क्रियाकाण्ड से भक्ति का जन्म नहीं होता। माला जपने की दैहिक

क्रिया से भक्ति पैदा नहीं होती। भक्ति तो मिटने की कला है। कैसे हम मिट जाएं, कैसे हम खो जाएं, क्योंकि निर्अहंकारिता की भूमि में भक्ति का पौधा पनपता है। प्रसिद्ध शेर है–

मिटा दे अपनी हस्ती को, अगर तू मरतबा चाहे,
कि दाना खाक में मिलकर गुले गुल्जार होता है।

हम किसी बहाने मिट जाएं, किसी निमित्त से हमारा अहंकार विलीन हो जाए तब हम पाएंगे कि ओंकार के संगीत से सारा अस्तित्व गूंज रहा है और वही परम–स्वर ईश्वर की अनुभूति है। अहंकार मिटे तो ओंकार प्रगटे। परमगुरु ओशो के अमृत वचन हैं–

'भक्त को दुस्साहसी होना ही होगा। बूंद अपने को खोने चली है। छोटी सी बूंद इतने विराट सागर में। फिर न पता लगेगा, न ओर–छोर मिलेगा; फिर अपने से शायद कभी मिलना भी न हो; इतनी खोने की जिसकी हिम्मत है, वही भक्त हो सकता है। और जो भक्त हो सकता है, वही भगवान हो सकता है। भक्त होने का अर्थ है, बीज ने अपने को तोड़ने का निर्णय लिया। तुम जमीन में बीज को बोते हो, जब तक बीज टूटे नहीं, वृक्ष नहीं होता; जब तक बीज मिटे नहीं तब तक अंकुरण नहीं होता; बीज की मृत्यु ही वृक्ष का जन्म है। तुम्हारी मृत्यु ही भगवान का आविर्भाव है। भक्त जहां मरता है, वहीं भगवत्ता उपलब्ध होती है।'

बाउल फकीर के गीत की अगली कड़ी है–

कौतो जौन हौय उदाशी तीर्थोबाशी, मौक्काते दियाछे नेला।
केउ बा मोशजिदे बोशे तार उद्देशे, शौदाय कौरे आल्ला आल्ला।।

कुछ लोग काशी जा रहे हैं, कुछ मक्का जा रहे हैं। कुछ मस्जिद में बैठकर अल्लाह–अल्लाह पुकार रहे हैं। तीर्थ जाने से भी परमात्मा नहीं मिलेगा। चले जाओ गिरनार, या चले जाओ जेरुसलम। कहीं भी जाने से परमात्मा नहीं मिलने वाला, अंतर–तीर्थ में आना होगा। उसकी तैयारी हो तो आओ, मदमस्त बाउल फकीरों का आमंत्रण स्वीकारो।

बाउल फकीर भीतरी तीर्थ में बसते हैं। वे तो अनूठे प्रेम लोक के वासी हैं। निमंत्रण है उस लोक में चलने का। वह हमारे अंदर ही है। यदि प्यास है तो हम भी मिटने को तैयार हो जाएं, ताकि श्रद्धा घट सके। भक्ति में डुबकी लग सके। और आप भी गा उठो–

तुम मुझे जीत लो, मैं हार जाऊं।
हार के प्रियतम, तुम्हारा प्यार पाऊं।
मेरे होने में है जुदाई, मिलन खुद के मिटने में है,
फूल खिलने की संभावना, बीज के गलने में है।
भक्ति की भूमि में, मैं मर ही जाऊं,
हार के प्रियतम, तुम्हारा प्यार पाऊं।

–मा अमृत प्रिया

पहला प्रवचन

साकार से निराकार की ओर

मुर्शिद रौंगमौहोले शौदाय झौलोक दैय
जार घूचेछे मोनेर आँधार, शेई देखते पाय।।
शौप्तोतौले अन्तःपुरी, आलिपूरे तार काछारी
देखले रे मोन शे कारीगोरी, हौबि मौहाशौय।।
शौजोल उदौय शेई देशेते, औनोन्तो फौल फौले ताते
प्रेम– पाति– जाल पातले तातें, औधोर धौरा जाये।।
रत्नो जे पाय आपोन धौरे, शे कि बाईरे खूँजू मौरे?
ना बूझिये लालोन भेंड़े, देश बिदेशे जाये।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

इस प्यारे बाउल गीत का भावार्थ इस प्रकार है– मेरे मुर्शीद, मेरे गुरू, मेरे अंतर गगन से, सदा अपना रूप दिखलाते रहते हैं। जिसके मन का अंधेरा अर्थात् मन का संशय दूर हो जाता है, उसे ही अपने निराकार मुर्शीद का दर्शन होता है। सप्ततल के अंतःपुर में निराकार मुर्शीद वास करते हैं और आज्ञाचक्र में उनकी कचहरी लगती है। मेरे गुरू की कारीगरी देखकर मन मेरा खुशी से गा उठता है। उस निराकार देश में सदा उजाला फैला रहता है। प्रेम और भक्ति के द्वारा ही उसे पाया जा सकता है। जो रतन–धन मेरे निराकार में ही है उसे बाहर मैं क्यों ढूंढूं? लालन फकीर कहते हैं कि मैं तुम्हें समझाता हूं कि वह रतन–धन तुम्हारे भीतर विराजमान है, इसके लिए देश–विदेश ना घूमो।

मुर्शीद रौंगमौहोले शौदाय झौलोक दैय। मुर्शीद यानि गुरु। झौलोक यानि झलक। एक गुरु के दर्शन होते हैं बाहर, जो देहधारी गुरु हैं। और एक गुरु की झलक अंदर मिलती है जो अदेहधारी है। निराकार गुरु हमारे भीतर मौजूद है। उसका दर्शन उसे मिलता है जो अन्तर आकाश में ठहरना सीखता है। अन्तर आकाश में कैसे प्रवेश किया जाता है? यह बाहरी गुरु सिखाता है। देहधारी गुरु को उस विदेही मुर्शिद की झलक सदा मिलती रहती है। जिसके लिए सूफियों ने गाया है–

दिल के आईने में बसा रखी है तस्वीरे–यार
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।

जार घूचेछे मोनेर आँधार, शेई देखते पाय। निराकार मुर्शिद का दर्शन उसे होता है जिसके मन का अंधेरा दूर हो गया। लेकिन मन का अंधेरा कैसे दूर हो? मन का अंधेरा संशय कैसे मिटे? देखे बिन नहीं हुई प्रतीति, बिन प्रतीति हुई नहीं प्रीति। जब तक हमने दर्शन नहीं किया तब तक संशय रहेगा। तब तक प्रीति नहीं हो सकती। प्रेम जहां है संशय वहां नहीं है। जहां संशय है वहां प्रेम नहीं है। जब तक भीतर प्रकाश के दर्शन न हो जाएं, जब तक हमारे भीतर का अंधकार न मिट जाए, तब तक संशय विद्यमान रहेगा।

एक बहुत प्यारी कथा परमगुरु ओशो ने सुनाई है कि एक युवक जंगल में घूमने का बहुत शौकीन है। वह अक्सर घूमने के लिए जाता है, किंतु एक बार जंगल में अचानक भटक जाता है। शाम हो गई, सर्दी का वक्त है, फिर अंधेरी रात उतर आई। अब वह लौट भी नहीं सकता। जंगल में फंस गया है। मन भय खा रहा है। दूर एक शेर ने दहाड़ा। युवक बहुत डर जाता है और डरकर भागने की कोशिश में फिसल जाता है। फिसलता है तो

पाता है वह खाई में गिरने लगा और गिरते–गिरते उसके हाथ में एक पेड़ की जड़ आ जाती है। पेड़ की जड़ उसने दोनों हाथों से कसकर पकड़ ली और लटक गया है।

सर्द रात है, हाथ ठुठरने लगे ठंड में, अब जड़ छूटी तब छूटी! बहुत मुश्किल से अपने प्राणों को बचा रहा है। जैसे–तैसे रात कटने लगी, चिड़ियों की आवाज सुनाई पड़ने लगी तो कुछ हिम्मत आई कि अब सुबह होने वाली है। फिर सुबह जब उजाला फैलता है तो क्या देखता है– नीचे कोई खाई ही नहीं है! जमीन दो इंच नीचे थी। नाहक परेशान हुआ डर की वजह से, अज्ञान में। तकलीफ में रात भर ठठुरता रहा। क्यों? क्योंकि अंधेरा था। अंधेरे में वास्तविकता पता नहीं चली। उसे जमीन नहीं दिखी।

ऐसे ही हमारे भीतर आत्म–अज्ञान का अंधकार है। इसमें संशय हमेशा रहेगा। और तब तक सच्ची प्रीति नहीं हो सकती। यह अंधकार कैसे मिटे? इसके लिए भीतरी गगन में अन्तर दर्शन करने के लिए हमें गुरु के पास कला सीखनी होगी। गुरु से यह गुर जानना होगा कि कैसे भीतर के आकाश में हम प्रवेश करें। जहां आंतरिक मुर्शिद सदा अपनी उपस्थिति की झलक देते हैं। संत दादू दयाल ने प्यारे शब्दों में गाया है–

दादू देखा दींदा सब कोई कहत शुनींदा।
हवा हिरस्स अंदर बस कींदा, तब यह दिन भया सीधा।
अनहद नाद गगन गढ़ गरजा, तब रस खाया अमींदा।
सुखमन सुन्न सुरत महलन में, आया अजर अकींदा।
अष्ट कंवल दल दृग में दर्शन पाया खुद खुदींदा।
जैसे दूध दूध दधि माखन, बिन मथे भेद न घींदा।
ऐसे तत्त मत्त सत साधन तब टुक नशा पिया पी दा।
नाहिं वह जोग ज्ञान मुद्रा तत यह गत और पदींदा।
जो कोइ चीन्ह लीन्ह यह मारग, कारज हो गया जींदा।
मुरशिद सत्त गगन गुरु लखिया तन मन कीन उसींदा।
आशिक यार अधर लख पाया हो गया दीदम दींदा।

शौप्तोतौले अन्तःपुरी, आलिपूरे तार काछारी, देखले रे मोन शे कारीगोरी हौबि मौहाशौय। शप्त तल– ओशो कहते हैं हमारा जो होना है वह सात मंजिला मकान की तरह है। हमारे सात तल हैं, सात चक्र हैं, सात शरीर भी हैं। प्रथम स्थूल शरीर है, भाव शरीर है, सूक्ष्म शरीर है, मनस शरीर है, आत्म शरीर है, ब्रह्म शरीर है, अंतिम शून्य शरीर है– निर्वाणकाया।

छठे चक्र में आलिपूरे तार काछारी। छठे यानि आज्ञा चक्र में परमात्मा की कचहरी

लगती है। कचहरी अर्थात् निर्णय का केन्द्र। यह जो आज्ञा चक्र है, यह हमारे संकल्प का केन्द्र है। निर्णय का केन्द्र है। जो यहां पर जाता है जिसने आज्ञा चक्र को जगा लिया उसके अन्दर एक महान संकल्प पैदा हो जाता है। वह अनिर्णायक स्थिति में कभी नहीं रहता। संशय में कभी नहीं रहता। उसके पास एक स्पष्टता होती है, एक निर्णय होता है, एक संकल्प होता है।

शौजोल उदौय शेई देशेते, औनोन्तो फौल फौले ताते। प्रेम–पाति–जाल पातले तातें, औधोर धौरा जाय। उस देश में सदा–सदा उजाला रहता है। और उसे कैसे पाया जा सकता है? प्रेम–पाति प्रेम के माध्यम से। प्रेम और भक्ति के द्वारा।

सूफी फकीर बायजीद हुआ, उसके पास एक युवक आया। उसने कहा मुझे परमात्मा के दर्शन करने हैं। ये जो सुना है कि मुर्शिद सदा झलक देते हैं उनके दर्शन करा दो मुझे। परमात्मा के लिए मैं तड़फ रहा हूं। बायजीद ने कहा तुमने कभी जीवन में प्रेम किया? युवक ने कहा, मुझे फुरसत ही नहीं रही। मेरी तो खोज परमात्मा की रही है, और आप प्रेम की बात करते हैं। मैं इस संसार के प्रेम में फंसा ही नहीं। बायजीद ने कहा आंखें बंद करो, फिर एक बार याद करो– कभी तुमने अपनी मां को, अपने पिता को, अपनी बहन को, किसी दोस्त को, किसी स्त्री को, किसी को तो प्यार किया होगा? युवक और अकड़कर बोला– मैंने व्यर्थ कार्यों में समय नहीं गंवाया। अपने जीवन का एक–एक पल परम सत्य की तलाश में संलग्न रखा। सारा जीवन मैंने इसे सत्कर्म में ही लगाया।

फकीर के आंखों में आंसू आ गए। फकीर बोला, काश मैं तुम्हारी मदद कर सकता! लेकिन मेरे पास मदद करने के लिए कोई उपाय नहीं है। मैं तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता। अत्यंत दुख के साथ कहता हूं मैं तुम्हारी मदद करने में सक्षम नहीं हूं। काश तुमने कभी किसी को प्यार किया होता तो उस प्यार को मैंने एक दिशा दे दी होती। उस प्यार की शक्ति को उर्ध्वगामी कैसे करते हैं, तुम्हें यह बताता। उस प्रेम के माध्यम से भक्ति में कैसे प्रवेश किया जाता है? वह बता दिया होता। मगर बिना प्रेम के भक्ति में प्रवेश संभव नहीं है। और बिना भक्ति के परमात्मा के दर्शन संभव नहीं है।

प्रेमी बाउल फकीर इसीलिए भक्ति के गीत गाते हैं। मस्त रहते हैं, प्रेम को जीते है। गुरु–भक्ति में, श्रद्धा में तल्लीन रहते हैं। प्रेम के माध्यम से ही प्रभु को पाया जा सकता है।

वे कहते हैं कि रत्नो जे पाय आपोन धौरे, शे कि बाईरे खूँजू मौरे? ना बूझिये लालोन भेंड़े, देश बिदेशे जाये। जो रत्न अपने भीतर मौजूद है उसे बाहर क्यूं खोजते हो। घर में धरी वस्तु नहीं सूझे, बाहर ढूंढ़न जाते। बाहर क्यूं ढूंढते हो जो भीतर है। आनंद की संपदा को तुम बाहर खोज रहे हो। अवधूत गीता में भगवान दत्तात्रेय कहते हैं–

बाहर भी हरि, भीतर भी हरि, है जगह न कोई जहाँ वो नहीं;
फिर क्यों पिशाच सा दौड़ रहे? जो ढूंढ़ रहे वो कहाँ नहीं!
सब जगह सच्चिदानंद अहो, वह तुम हीं हो, तुम हीं तो अहो।

संत राबिया ने एक बार अनूठा व्यंग्य किया। एक शाम को उसके घर में सुई गुम गई, और वह बाहर सड़क पर खोजने लगीं। राह से निकलते लोगों ने पूछा, राबिया क्या खोज रहीं हो? राबिया ने कहा– मेरी सुई घुम गई है, अब तो अंधेरा भी हुआ जा रहा है। आओ, मेरी मदद करो। सब लोग सुई ढूंढने लगे। शाम का अंधेरा घना होने लगा। फिर किसी ने पूछा, किस जगह गिरी थी तुम्हारी सुई?

राबिया ने कहा, गिरी तो थी झोंपड़ी के भीतर।

लोग बोले– तुम पागल हो! हम लोगों का समय खराब कर रहीं हो और अपना भी। जब तुम्हारी सुई भीतर गिरी तो तुम बाहर क्यों खोज रही हो?

राबिया ने कहा भीतर उजाला नहीं है। वहां अंधेरा है। तो मैंने सोचा बाहर उजाले में खोजते हैं।

ऐसे हीं जो चीज भीतर है हम बाहर खोज रहे हैं। हम काशी जा रहे हैं, हम काबा जा रहे हैं। हम कर्मकांड के नाम पर, योग के नाम पर तरह–तरह की कवायद कर रहे हैं। हम शांत बैठना नहीं सीख रहे, हम प्रेम में डूबना नहीं सीख रहे। प्रेम में होने से, निष्क्रिय जागरूक होने से, अपने भीतर जाने से वह संपदा मिलती है; बस वहीं हम नहीं कर रहे।

रत्नो जे पाय आपोन धौरे, शे कि बाईरे खूँजू मौरे? ना बूझिये लालोन भेंड़े, देश बिदेशे जाये। कहां–कहां लोग घूम रहे हैं। सभी सन्त कहते हैं कि बाहर की दौड़ छोड़ो। एक दौड़ थी संसार की। दुनिया में आनन्द पाने के लिए लोग साधन के लिए दौड़े जा रहे थे। बाहर दौड़ों, आनंद के साधन मिल जाते है परंतु आनन्द नहीं मिलता। अब सोचते हैं आनन्द बाहर नहीं मिला तो भीतर चलें। मगर भीतर भी दौड़ जारी रहती है– अब परमानन्द पाना है मुक्ति पाना है, मोक्ष पाना है। एक दौड़ थी बाहर की, फिर एक दौड़ भीतर की शुरू हो जाती है। लालन फकीर कहते हैं सारी दौड़ों को खत्म करो। किसी शायर ने कहा है–

रुकूं तो मंजिलें ही मंजिलें हैं, चलूं तो रास्ता कोई नहीं है।
दरिचा बेसदा कोई नहीं है, अगरचें बोलता कोई नहीं है।

हम कब दौड़ना खत्म करेंगे? वो जो मौजूद है, वह रुकने से मिलता है। भागम–भाग बंद हो तो जो उपस्थित है, उस पर नजर पड़े। उसकी याद आए जो कभी गुमा ही नहीं। बस भूल गया है, विस्मृत हो गया है।

कहां थे आप, जमाने के बाद आए हैं।
मेरी तलाश भी, जाने के बाद आए हैं।
जमाने भर में जिसे खोजा, दर–बदर ढूंढ़ा
तब हम थके, रुके, हारे, तो आज आए हैं।
मेरी ही रूह, समाये थे याद आये हैं।
मेरी तलाश भी, जाने के बाद आए हैं।

जिस दिन परमात्मा से साक्षात्कार होता है उस दिन पता चलता है कि परमात्मा से मिलन हुआ कैसे? वस्तुतः मिला नहीं परमात्मा, हमें बस याद आ गया। हमारे भीतर व्यस्तता का जो पर्दा था, वह उठा। भ्रम दूर हुआ और हमने पाया सत्य तो शाश्वत रूप से मौजूद था। हम ही उस तरफ पीठ किए हुए थे। हमने ही अपने द्वार दरवाजे बन्द किए हुए थे। जिस दिन हमने अपने ह्रदय के दरवाजे खोले हमने पाया की उसकी रोशनी सब तरफ से हमारी ओर आ रही है। सत्य का सूर्य उगा ही हुआ है। सर्वत्र प्रकाश व्याप्त है। हमारे भीतर मौजूद है, हमारे बाहर मौजूद है।

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

दूसरा प्रवचन

गुरु बिन जीवन व्यर्थ गंवाया!

गुरु दौया कौरो मोरे गो बैला डूबे एलो
गुरु दौया कौरो मोरे, गो बैला डूबे एलो।
तोमार चौरोन पाबार आशे, रोइलाम बोशे, शोमौय बोये गैलो
आमि औमूल्यो धौन लोये हाते, भौबे एशेछिलाम व्यापार बोले
छौयजोन बोम्बेटे जूटे आमाय पौथ भूलाय, शे धौन निलो लूटे
आबार बैला गैलो शोन्धा होलो, जौम राजा डौंका बाजाईलो
मौहाकाले घिरे एलो शौंगेर शाथी, केहो ना रोहिलो
आमार कि हौबे ओन्तिमकाले, आमि रोयेछी बिना शोम्बौले
औधीन पांज बौले गुरु भूले शाधेर जौनोम बिफौलेते गैलो।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

इस प्यारे बाउल गीत का भावार्थ इस प्रकार है– हे गुरुदेव! मुझ पर अपनी दयादृष्टि बरसाओ। तुम्हारे चरणों की आशा में मेरे दिन बीतते जा रहे हैं। मैं अनमोल धन लेकर आया था। संसार के व्यापार में षट्रिपुओं ने मेरा खजाना लूट लिया। उनके वश में आकर अपना लक्ष्य भी भूल गया।

अब चलने की बेला में मेरा कोई संगी– साथी नहीं है, कोई सहारा नहीं है। पंजशाह कहते हैं, गुरु को भुलाकर, साधना के बिना जीवन व्यर्थ जाता है। इस संसार में आकर जो अमूल्य धन गँवा देता है, उसका जीवन निष्फल हो जाता है।

एक घटना आपको सुनाती हूं जिसकी चर्चा परमगुरु ओशो ने की है। फ्रांस में एक बार कैदियों ने बगावत कर दी। कैदियों की संख्या थी बीस हजार और उस जेल में संतरियों की संख्या केवल बीस थी। क्योंकि कैदी आपस में हमेशा मिल–जुलकर रहते थे इसलिए बीस संतरी काफी थे। तो जब कैदियों ने बगावत कर दी तो जेलर भी घबराया कि अब क्या किया जाए, करने के लिए क्या था। जेलर ने सतंरियों से कहा कि जो छोटे–छोटे निकास द्वार हैं वहां पर सब लोग तैयार हो जाओ और जो मुख्य द्वार है उसमें कोई कैदी नहीं आएगा। सब लोग आश्चर्यचकित हो गए कि ये भी कोई बात है, सारे कैदी निकलकर भाग जाएंगे, आप कह रहे हो कि मुख्य द्वार को खुला रखा जाए।

जेलर ने कहा कि कैदियों ने आज तक तो कभी बगावत नहीं की थी, और अब जब कर रहे हैं तो ऐसा लगता है कि कोई बाहर का व्यक्ति आ गया है जिन्होंने इनको भड़का दिया है और जिन्होंने इन्हें भागने का रास्ता भी बता दिया है। ये जो बाहर का व्यक्ति आया है लगता है जानकार है या कोई गुरु है और उसे बाहर जाने के छोटे–छोटे रास्तों का पता है। उन्हीं से कैदियों को भगाएगा, मुख्य द्वार से वह कभी भी नहीं आएगा, क्योंकि जो जानता है वह मुख्य द्वार से कभी नहीं जाता, वह छोटे–छोटे रास्तों से ही निकालने की कोशिश करता है इसलिए छोटे रास्तों पर कड़ा पहरा लगा दो।

हमारे जीवन में भी ऐसा ही है इस संसार के कारागृह में, इन षटरिपुओं के कारागृह में जब फंसते हैं तो हम भी सोचते हैं कि मुख्य द्वार से निकलें। मुख्य द्वार क्या है? हम सोचते हैं कि हम क्रोध से पार हो जाएंगे, जब ये क्रोध खत्म हो जाएगा तब जाकर हम इस कारागृह से पार हो पाएंगे, तब जाकर करुणा पैदा होगी। हम सोचते हैं कि हमारे जीवन

की बुराइयां छूट जाएं, नकारात्मकताएं छूट जाएं तब जाकर हमारे भीतर सकारात्मकता पैदा होगी, तब हमारे भीतर एक सिंहासन होगा जिसमें कि परमात्मा विराजमान होगा। नहीं, ऐसा कभी नहीं होता है। अगर हम क्रोध से लड़ेंगे और क्रोध के दरवाजे से बाहर निकलने की कोशिश करेंगे तो हम हार–हार जाएंगे। कभी भी छुद्रताओं को विराट से मत लड़ाओ, कभी भी फूल को चट्टान से मत लड़ा देना। इसलिए जो जानकार है वह छोटी–छोटी बातों से, छोटी–छोटी विधियों से हमें बड़ी–बड़ी चीजों से मुक्त करा देता है।

गुरु का काम ही यही है। गुरु कभी नहीं कहेगा कि क्रोध मत करो, गुरु एक सांस की विधि थमा देगा, धीमी गहरी सांस लो और मन को शांत करो। गुरु कहेगा कि बैठो और अपनी सांस को देखो, सांस को धीमी करते जाओ। और याद रखना, जिसने अपनी सांसों की गति को धीमी कर लिया उसका पूरा जीवन रूपांतरित हो जाता है। धीमी सांस करके कभी भी कोई क्रोध नहीं कर सकता, धीमी सांस करके कभी कोई कामना में नहीं उतर सकता। ये तो एक छोटी सी विधि बताई गुरु ने, ऐसी और कई छोटी–छोटी विधियां गुरु आपको बताएगा लेकिन विचारों से लड़ने के लिए नहीं कहेगा। तो मुख्य द्वारों पर बड़े–बड़े पहरे हैं इसलिए काम से, लोभ से, मोह से, क्रोध से लोग लड़ते–लड़ते हार जाते हैं और कभी भी पार नहीं हो पाते। छोटे द्वारों से निकलना है और इसकी विधि गुरु बताएगा। इसलिए गुरु ही डूबने से बचाता है, हम तो डूबने के आदी हो गए हैं। हमें काम ने डुबाया, हमें क्रोध ने डुबाया, हर पल हम डूब ही रहे हैं।

कबीरदास जी कहते हैं कि जब सीधा घड़ा है तो सीधे घड़े में संसार का पानी भरेगा और वह डूबने के लिए बाध्य ही है। अगर कोई सीधा घड़ा है और नदी में तो और उसमें पानी भरता जा रहा है तो वह जरूर डूब ही जाएगा और अगर कोई घड़ा उल्टा हो गया है तो वह डूब नहीं सकता। उल्टा घड़ा होना मतलब हम झुक गए, हम निर्अहंकारी हो गए, जब हमने अपने अहंकार को उल्टा रख दिया तब हमें संसार नहीं डुबा सकता क्योंकि अब इस पात्र में जल भर ही नहीं सकता लोभ का, मोह का, क्रोध का कोई जल नहीं भर सकता। तो अपने जीवन के घड़े को उल्टा कर दो ऐसा कह रहे हैं कबीरदास जी। और घड़े को उल्टा करना तो बहुत आसान है, इसकी विधि गुरु बता देंगे। कुछ भी नहीं करना है, सारे प्रयास व्यर्थ हैं, हम जितना ज्यादा प्रयास करेंगे उतने ही अहंकारी होते जाएंगे। निष्प्रयास हो जाओ और गुरु के चरणों में समर्पण कर दो, गुरु के प्रेम में पड़ जाओ और बात बन जाएगी। इसीलिए तो कहते हैं गुरु जो हमें देता है वह प्रसाद है क्योंकि वह हमसे लेता तो कुछ नहीं है, केवल हमें देता है। केवल हमें देता है कीमियां कि कैसे हम इस

जगत से मुक्त हो जाएं, कैसे इस भवसागर से पार हो जाएं और इसीलिए गुरु का कर्ज कभी चुकाया नहीं जा सकता।

तोमार चौरोन पाबार आशे
रोइलाम बोशे, शोमौय बोये गैलो
आमि औमूल्यो धौन लोये हाते
भौबे एशेछिलाम व्यापार बोले
छौयजोन बोम्बेटे जूटे आमाय पौथ भूलाय
शे धौन निलो लूटे

एक अमीर व्यक्ति के चार पत्नियां थीं। तीन पत्नियों को तो वह बहुत प्यार करता था, तरह–तरह के सामान लाता था, गिफ्ट लाता था और समय भी देता था। चौथी पत्नी पर बिल्कुल ध्यान नहीं देता था। न उसके खाने की चिंता, न उसके रहने की चिंता, वह बिल्कुल सूखकर जैसे कांटा हो गई हो, दीनहीन दिखाई देने लगी वह स्त्री। एक बार यह अमीर बीमार पड़ा और डॉक्टर ने कह दिया कि अब तुम्हारी जिंदगी के कुछ ही दिन बचे हैं। उस अमीर आदमी ने अपनी पहली पत्नी को बुलाया जिसको कि यह बहुत प्यार करता था उससे बोला कि मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूं और तुम भी मुझे प्यार करती हो, मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता, अब मेरी अंतिम बेला आने वाली है तो क्या मेरा साथ दोगी, मेरे साथ चलोगी? पत्नी ने कहा कि मैं कैसे साथ जा सकती हूं, कौन किसके साथ गया है, मैं तो संग नहीं जा पाऊंगी। अब दूसरी पत्नी को उसने बुलाया, दूसरी पत्नी से कहा कि अब जाने की बेला बहुत जल्दी आने वाली है, जिंदगी में जितना प्यार किया था उससे अभी जी भरा नहीं है क्या तुम मेरे साथ उस लोक तक साथ चलोगी? उस पत्नी ने कहा कि निश्चित चलूंगी और मरघट तक तुम्हारा साथ दूंगी, तुम्हारी जितनी सेवा हो सकती है मैं करूंगी लेकिन साथ वहां तक नहीं चल सकती।

तब तीसरी पत्नी को बुलाया गया। तीसरी पत्नी ने कहा कि मैं तुम्हारे साथ जाने की तो बात छोड़ो, तुम जहां मरे कि मैं तुरंत शादी कर लूंगी। अमीर के आंखों में तो आंसू आ गए। अब वो किस मुंह से चौथी पत्नी को बुलाए जिसको कभी उसने प्यार नहीं किया, जिसको कभी उसने कुछ दिया ही नहीं, जिसके खाने–पीने का ख्याल भी न रखा लेकिन फिर भी डरते–डरते उसने चौथी पत्नी को भी खबर भेजी और वह पत्नी दौड़ी–दौड़ी चली आई, बोली कि मेरे अहो भाग्य, आपने मुझे खबर तो दी कि तुम जाने वाले हो। अब जितना भी समय बचा है मेरे लिए तो अपने जीवन का उपहार हैं ये, मैं

अहोभाग्य समझती हूं कि तुमने मुझे इतना प्रेम किया। अमीर आदमी ने पूछा कि क्या तुम मरने के बाद मेरे साथ चलोगी? पत्नी बोली निश्चितरूप से, मैं जीवन भर तुम्हारे साथ थी, तुम्हारे लिए ही जीती थी और अब तुम्हारे साथ न जाऊंगी तो किसके साथ जाऊंगी, तुम्हारे बिना मेरे जीने का फायदा ही क्या है, मैं तो तुम्हारे साथ ही जाऊंगी।

हमारे जीवन का भी यही हाल है। वह जो पहली पत्नी है वह पहली है हमारी काया जिसके लिए सारी जिंदगी हम जीते हैं। दूसरी पत्नी के रूप में हैं हमारे प्रियजन। काया भी साथ नहीं जाती, प्रियजन भी साथ नहीं जाते। तीसरी पत्नी है संपत्ति, जैसे ही हम मरे संपत्ति दूसरे की हो गई। फिर चौथी पत्नी है हमारी चेतना लेकिन इस पर हमने कभी ध्यान नहीं दिया, इसको हमने कभी प्यार नहीं किया और यही चेतना हमारे साथ जाती है। यह जो चैतन्य है यही हमारी आत्मा है और यही मृत्यु के साथ भी हमारे साथ जाती है।

दबा के कब्र में सब चल दिए दुआ न सलाम
जरा सी देर में क्या हो गया जमाने को
जब तक तन में है शेष प्राण तब तक देते सब प्रेम मान
मृत हुए तो पत्नी भी भय से कहती ले जाओ श्मशान।

जैसे ही मृत हुए तो पत्नी को भी डर लगने लगता है कि अब ले जाओ मरघट और अंतिम क्रिया करो, कोई नहीं देता साथ।

अब अपना पराया भेद तजो, गोविंद भजो गोविंद भजो।

शंकराचार्य जी कहते हैं कि हे मूढ़! गोविंद को भजो, जो तुम्हारे साथ जाने वाला है उसकी याद में जियो।

पंजशाह कहते हैं गुरु को भुलाकर साधना बगैर जीवन व्यर्थ जाता है, संसार में आकर जो इस अमूल्य धन को कमा लेता है उसका जीवन सफल हो जाता है। साधना क्या है? हमारी चेतना का तीर अभी बाहर की तरफ है, हमारी चेतना का तीर अभी यश की तरफ है, हमारी चेतना का तीर अभी पद की तरफ है, प्रतिष्ठा की तरफ है, संबंध की तरफ है, बस बाहर-बाहर ही चेतना का तीर है। अब साधना उलटबाँसी है, इस चेतना के तीर को अपनी ओर लौटाना है। अब गंगा गंगोत्री की तरफ चल पड़ी, हम अपने उद्गम की ओर चल पड़े। जहां से हम आए थे वहां चल दिए, जहां से हम पैदा हुए थे उस मूल स्रोत की ओर चल पड़े। यही है साधना।

आइए, परमगुरु ओशो को सुनते हैं–

'गुरजिएफ ने लिखा है कि कजाकिस्तान में वह बड़ा हैरान हुआ। वह एक ऐसे कबीले के करीब आया, जिस कबीले के छोटे–छोटे बच्चों को यह लक्ष्मणरेखा की बात बड़े बचपन से सिखा दी जाती है। फिर यह जिंदगी–भर काम करती है। कजाकिस्तान गरीब इलाका है। स्त्रियों को काम करने जाना पड़ता है। छोटे–छोटे बच्चे, उनको किसके सहारे छोड़ जाओ? तो एक रास्ता उन्होंने निकाला है सदियों से। छोटे बच्चे के चारों तरफ खड़िया से एक लकीर खींच देते हैं और उस बच्चे से कह देते हैं, इसके बाहर नहीं जाना है; इसके बाहर तू जा नहीं सकता। कोई जाने का उपाय ही नहीं है। छोटे बच्चे और बच्चों को भी देखते हैं अपनी–अपनी खड़िया के घेरे के भीतर बैठे। कोई बाहर नहीं निकलता। धीरे–धीरे यह आत्मसम्मोहन इतना गहरा हो जाता है कि गुरजिएफ ने लिखा है, सत्तर साल के आदमी के चारों तरफ खड़िया की लकीर खींच दो और कह दो कि तुम इसके बाहर नहीं जा सकते हो; वह बाहर नहीं जा सकता।

खड़िया की लकीर उसे बाहर जाने से कैसे रोक सकती है? तुम्हें नहीं रोक सकती, मगर उसे रोकती है। उसके मन में एक भ्रांति बैठ गई है। भ्रांति सघन हो गई है। बार–बार पुनरुक्त करने से सम्मोहित हो गया है वह। गुरजिएफ ने बहुत कोशिश की कि उसे खींचकर बाहर निकाल लूं, लेकिन खींचकर भी न निकाल सका। वह जैसे ही खड़िया के पास आए, जैसे कोई अदृश्य दीवाल उसको रोक ले। निकलना भी चाहे तो निकल नहीं सकता।

ऐसे मनुष्य के मन के सम्मोहन हैं। और तुम्हारा अहंकार खड़िया की खींची हुई लकीर है। खड़िया की लकीर तो कुछ होती है, तुम्हारा अहंकार उतना भी नहीं है। अहंकार सिर्फ एक मानी हुई भ्रांति है जो बचपन से हमें समझायी गई है कि तुम हो; तुम अलग हो; कि तुम भिन्न हो; कि तुम्हें कुछ दुनिया में करके दिखाना है; कि तुम्हें नाम छोड़ जाना है; कि इतिहास में तुम्हें अपने चिन्ह छोड़ जाने हैं, ऐसे ही मत मर जाना, कि तुम कुलीन घर में पैदा हुए हो, अपने बाप–दादों का नाम रोशन करना है। हजार–हजार ढंग से हमने हर बच्चे को यह सिखाया है कि तू भिन्न है और तुझे अपनी भिन्नता का हस्ताक्षर इस पृथ्वी पर सदा के लिए छोड़ जाना है। यह लक्ष्मणरेखा गहरी हो गई है।'

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

तीसरा प्रवचन

सद्गुरु हैं पारसमणि

शे पौरोशेर जोर जे पौरोश
शे पौरोशेर जोर जे पौरोश।
शे पौरोश चिनिले ना
शामान्यो पौरोशेर गुन लोहार
काछे गैलो जाना।
पौरोशमोनि शौरूप गोंसाई
शे पौरोशेर तूलना नाई
पौरोशिबे जे जौना ताई
घूचिबे जौठोर– जौंत्रोणा।।
कूमीरेते पौर के जैमोन
धौराय शे आपोल धौरोन
पौरोशे जानिबे मोन
एमनी जैनो पौरोशोना।।
ब्रोजेर ओई जौलोद कालो
जे पौरोशे पौरोश होलो
लालोन बौले, मोनरे चौलो
जानिते शेई उपाशौना।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

इस प्यारे बाउल गीत का भावार्थ इस प्रकार है– जिस पारस के स्पर्श से पारस हुआ, उस पारस रूपी परमात्मा को पहचान न सका। सामान्य स्पर्श का गुण लोहे से ही जाना जाता है, जो स्पर्श से हीं उसे कंचन बना देता है।

गुरु–गोसांई हमारे पारसमणी स्वरूप हैं। जिनके स्पर्श की कोई तुलना ही नहीं है। जिसको गुरु का स्पर्श मिल जाता है उसकी समस्त यातना मिट जाती है। मगरमच्छ जैसे ध्यान लगाकर अपने हीं तरीके से शिकार पकड़ता है और शिकार भी आकर्षित होकर मगरमच्छ के पास चला जाता है, वैसे हीं ओ मन! स्पर्श से हीं जान ले तू और कंचन बन जा।

ब्रज का वो काला कमली भी किसके मधुर स्पर्श से पारस हुआ? प्रेम भक्ति के स्पर्श से हीं! लालन फकीर कहते हैं कि रे मन! चलो उसी प्रेम भक्ति के स्पर्श की उपासना करें।

शे पौरोशेर जोर जे पौरोश
शे पौरोशेर जोर जे पौरोश।
शे पौरोश चिनिले ना
शामान्यो पौरोशेर गुन लोहार
काछे गैलो जाना।

पारस और संत में, बड़ो अंतरो जान;
एक लोहा कंचन करै दूजा आप समान।

एक बार की घटना है, एक लोहे के टुकड़े के भीतर एक सोने के टुकड़े को देखकर ललक पैदा हो गई, उसके भीतर भी इच्छा जन्म गई कि काश, मैं भी सोने जैसा चमकता! मेरा भी उतना ही सम्मान होता जितना कि सोने का होता है। मेरी भी उतनी ही कीमत होती जितना कि सोने की होती, काश मैं सोना हो जाता! लोहे का टुकड़ा सोने की खदान में पहुंच गया। क्योंकि उसने सुना हुआ था कि जिसके साथ में रहते हैं वैसा ही रंग लग जाता है। वहां जाकर वह सोने से प्रार्थना करता है कि मैं तुम्हारे चरणों में अपना जीवन गुजार दूंगा अगर तुम मुझे भी अपने जैसा बना दो, मैं तुम्हारे साथ ही रहने के लिए तैयार हूं। सदा–सदा के लिए तुम्हारा दास होने को राजी हूं।

लोहे का टुकड़ा सोने की खदान में काफी समय तक पड़ा रहा लेकिन एक दिन उसने देखा कि मेरे भीतर तो कोई परिवर्तन हुआ ही नहीं, मैं तो अभी भी वैसा ही काला दिखता हूं। उसके भीतर बड़ी निराशा पैदा हुई। बेचारा बहुत दुखी हो गया और हताश होकर फिर से अपने लोह–मित्र–मंडली के पास जाने लगा। वह जब जा रहा था तो आंखों में आंसू थे। दूर

से एक आवाज आती है कि मित्र, इतने उदास और इतने परेशान होकर क्यों जा रहे हो? पीछे मुड़कर देखा तो एक विचित्र सा पत्थर था जो उसे आवाज दे रहा था। पत्थर बोला कि अब तुम मेरे पास आओ, अभी तक तो तुमने अपना पूरा समय कुर्बान कर दिया सोने के साथ... मेरे पास आओ मैं तुम्हें सोना बना दूंगा।

लोहे ने पत्थर से कहा कि अपनी शक्ल देखी है, पहले तुम तो सोना बन जाओ तभी तो मुझे सोना बनाओगे। पत्थर बोला, मुझे थोड़ा वक्त दो, मेरे पास कुछ समय तो बिताओ। तुमने सोने के पास तो सारा जीवन व्यतीत कर दिया, अब थोड़ा सा वक्त मुझे दे दो फिर देखना क्या होता है। लोहे ने सोचा कि चलो देख लेते हैं थोड़े समय यहां भी गुजार लेते हैं। वह पत्थर के पास जाता है और जैसे ही उस पत्थर का स्पर्श पाता है वह देखता है कि अरे! मैं तो सोने जैसा चमक रहा हूं। वह बहुत खुश हो जाता है।

याद रखना, लोहा चाहे सोने के पास सदियों पड़ा रहे फिर भी सोना नहीं बन सकता। पारस पत्थर अपने स्पर्श मात्र से लोहे को सोने में रूपांतरित कर देता है। परमात्मा या गोविंद भी सोने जैसा ही है। मगर सदगुरु पारस जैसा है। गुरु के स्पर्श से शिष्य स्वर्णिम हो जाता, कुंदन बन जाता है।

पलटू पारस क्या करे, जो लोहा खोटा होय।

लोहा अगर खोटा हो तो पारस क्या कर सकता है? लोहा अपने आपको चमका ले और सोने की पालिश चढ़ा ले, चांदी की पालिश चढ़ा ले और बोले कि मैं तो सोने-चांदी जैसा हूं। अब मुझे क्या जरूरत है पारस पत्थर के पास जाने की, फिर तो पारस पत्थर भी कुछ मदद नहीं कर सकता। अप्रामाणिक शिष्य भी ऐसा ही है, वह सोचता है कि मैं अपने ज्ञान का लबादा ओढ़कर, शास्त्रीय-कपड़े पहनकर चला जाऊं गुरु के पास, क्योंकि मैं तो सब जानता ही हूं। 'आई नो आल'... मुझे तो गीता कंठस्थ है! पंडितों के प्रवचनों से सब कुछ सुन रखा है, शास्त्रों से जानकारी हासिल कर ली है, फिर क्या जरूरत है गुरु के पास जाने की? चलो फिर भी देख लेते हैं, शायद इनसे कुछ और जानकारी प्राप्त हो जाए। ऐसे उधार ज्ञान से भरा शिष्य जब पारस रूपी गुरु के पास पहुंचता है तो गुरु इसका उद्धार नहीं कर सकता। क्योंकि वास्तविक शिष्यत्व झुकने की कला है। मिटने की कला है, सीखने की कला है शिष्यत्व। बौद्धिक संग्रह बढ़ाना नहीं है, वरन उसके पार उठना है।

कबीर साहब कहते हैं-

गुरु बेचारा क्या करे जो शिष्य माही चूक।
भावे ज्यों परमेधिए बांस बजाए फूंक।।

बांस से स्वर नहीं निकल सकता, बांस को पोला होना होगा, खुद से खाली होना होगा। ऐसे ही हमारे भीतर जो अहंकार है वह ठोस है, जब इसको लेकर गुरु के पास जाते हैं तब बात बन ही नहीं सकती। कोई रूपांतरण नहीं हो सकता, हमें नरम होना होगा, पोला होना होगा, हमें अहंकार विहीन, विनम्र होना होगा तब गुरु की बांसुरी हम बन सकते हैं और फिर वह परमात्मा के स्वर हमसे फूंक सकता है।

हरि के पीछे जो जाता है, रीता का रीता रह जाता है,
जो झुका गुरु के चरणों में, पीछे हरि आ जाता है।
गुरु के पीछे गोविंद खड़ा, बाकी सब धर्म–कर्म पचड़ा,
अथ सद्गुरु शरणम् गच्छामि, भज ओशो शरणम् गच्छामि।

पौरोशमोनि शौरूप गोंसाई
शे पौरोशेर तूलना नाई
पौरोशिबे जे जौना ताई
घूचिबे जौठोर– जौंत्रोणा।।

गुरु गोसांई हमारे पारसमणि स्वरूप हैं, जिनके स्पर्श की कोई तुलना ही नहीं है। जिसको भी गुरु का स्पर्श मिल जाता है उसकी समस्त यंत्रणा मिट जाती है। यह जादुई स्पर्श क्या है? जैसे हम कहीं पर्यटन स्थल पर घूमने जाते हैं, किसी सौंदर्य को देखते हैं तो हमारे भीतर एक सुखद प्रतीति होती है, आनंद की अनुभूति होती है। यह आंख का स्पर्श है। सुंदरता ने हमारी आंख को छुआ। जैसे हम मधुर संगीत को सुनते हैं तो हमें बहुत अच्छा लगता है, ये संगीत की तरंगों ने हमारे कान को स्पर्श किया। ऐसे ही जब बगीचे में जाते हैं तो मादक सुगंध घेर लेती है, फूलों के परागकणों ने हमारे नासापुटों को स्पर्श किया। यह भी एक तरह का स्पर्श है। भोजन करते हैं तो जीभ को अच्छा लगता है। स्वाद भी एक स्पर्श ही है।

अलग–अलग इंद्रियों से अलग–अलग प्रकार के स्पर्श होते हैं। मन विचारों से स्पर्शित हो जाता है, हृदय भावनाओं से स्पर्शित हो जाता है। ऐसे ही जब हम गुरु के पास जाते हैं, गुरु के उपदेश जब हमारे कानों में पड़ते हैं तो उस स्पर्श से हमारे भीतर एक रूपांतरण शुरू हो जाता है। गुरु की मौजूदगी, उसका ठहराव, उसका प्रेमल एक्सप्रेशन हमारे भीतर कुछ छू जाता है। तब हमें लगता है कि काश, हम भी इतने शांत हो जाते। काश, हम भी इतने प्रेमपूर्ण हो जाते। काश, हम भी इतने समताभाव में जी पाते। हमारे भीतर भी चांद–तारों को छूने की आकांक्षा पैदा होती है, हमारी आंखें भी सामान्य जीवन से ऊपर की ओर उठने लगती हैं। यही गुरु का स्पर्श है। जिसे गुरु का स्पर्श मिल जाता है उसकी समस्त यंत्रणा मिट जाती

है, गुरु के स्पर्श से सारा दुख मिट जाता है। क्योंकि परमानंद की ओर उन्मुखता, फिर अंतर्यात्रा आरंभ हो जाती है।

अंगुलीमाल की कथा सबको पता हैं। अंगुलीमाल ने संकल्प लिया था कि हजार लोगों की हत्या करके उनकी अंगुलियों की माला अपने गले में डालेगा। 999 लोगों की हत्या वह कर चुका था। अंत में तो उसने अपनी मां को भी कह दिया कि तुम मेरे लिए खाना लेकर भी मत आना। मेरे भीतर इतना क्रोध है कि अगर मेरा संकल्प मुझे पूरा होता नहीं दिखा तो मैं तुम्हें भी मार सकता हूं।

एक बार बुद्ध उस गांव से गुजरते थे। लोगों ने कहा कि आप यहां से न जाएं, यहां जंगल में अंगुलीमाल जैसा खतरनाक हत्यारा रहता है। बुद्ध ने कहा कि अगर मैं यहां से नहीं जाऊंगा तो कौन जाएगा? बेचारा एक आदमी की प्रतीक्षा में कबसे है!

बुद्ध जाते हैं और अंगुलीमाल दूर से देखता है कि कोई भिक्षु चला आ रहा है। अंगुलीमाल को क्रोध आता है और वह जोर से दहाड़ता है कि भिक्षु! तुम वहीं रुक जाओ, कैसे तुमने इधर आने की हिम्मत की! क्या तुम्हें पता नहीं मैं अंगुलीमाल हूं, मैं तुम्हें मार डालूंगा? बुद्ध ने कहा कि निश्चितरूप से मुझे पता है कि तुम अंगुलीमाल हो और मुझे तुम कह रहे हो कि 'रुक जाओ'! तो मैं तो कब का रुक गया हूं, मैं तो कब का ठहर गया हूं। तुम कह रहे हो कि मुझे मार डालोगे तो ठीक, मेरा अहंकार तो कब का मर चुका है। मुझे कोई आपत्ति नहीं है, तुम मुझे भौतिक रूप से भी मार सकते हो। मैंने अपने शाश्वत चैतन्य को पहचान लिया है।

बुद्ध की बातें अंगुलीमाल को छू गईं। उनकी प्रेमपूर्ण तरंगें, उनकी करुणा छू गई। उसके भीतर भी करुणा पैदा हो गई और वह बोला कि तुम रुक जाओ, तुम ठहर जाओ भिक्षु। मैं तुम्हें नहीं मारना चाहता। मौका दे रहा हूं भाग जाओ। न जाने क्यों तुम पर दया आ रही है!

उसका हृदय परिवर्तन शुरु हो गया। बुद्ध ने दूर से उसे स्पर्श कर लिया।

बुद्ध बोले कि तुम अपना संकल्प पूरा कर ही लो। मुझे मार डालो। लेकिन मरने वाले की एक अंतिम इच्छा पूरी करनी होती है, करोगे? अंगुलीमाल ने कहा कि निश्चतरूप से करूंगा। बुद्ध ने कहा कि पास में यह जो पेड़ दिखाई दे रहा है इस पेड़ की एक पत्ती मुझे तोड़कर दे दो। अंगुलीमाल ने कहा कि आप पत्ती की बात करते हो, लो यह पूरी डाल तोड़कर देता हूं। बुद्ध कहते हैं कि तुमने यह जो डाल तोड़ी है अब तुम इसे जोड़ दो? मेरी अंतिम इच्छा है कि इस डाल को पुनः वृक्ष से जोड़ दो। अंगुलीमाल चौंका! उसने तो आज तक तोड़ा ही तोड़ा था, जोड़ने की बात कभी सोची भी नहीं थी। बुद्ध ने कहा, तोड़ने में शूरवीरता नहीं है। तोड़ना तो कायरता का लक्षण है। असली वीरता तो जोड़ने में है। क्या

तुम इसे जोड़ सकते हो?

अंगुलीमाल अंतिम शर्त को पूरी नहीं कर पाया और एक क्रांति घटित हो गई। उस एक बात से अंगुलीमाल बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा। बुद्ध की करुणा, प्रेम, अहिंसा, उनका आभामंडल, चुम्बकीय बुद्धक्षेत्र ऐसा प्रभावित कर गया अंगुलीमाल को कि उसके भीतर रूपांतरण पैदा हो गया। नई धारणा प्रवेश कर कई– जोड़ना यानि प्रेम!

प्रेम जोड़ने वाला तत्त्व है, प्रेम ही रूपांतरणकारी तत्त्व है। बाकी तर्क से कोई रूपांतरण नहीं होता। करुणा और प्रेम ही रूपांतरणकारी तत्त्व हैं जो गुरु की ओर से हम तक आते हैं। जैसे ही गुरु की तरंगें हमें छूती हैं हमारे भीतर परिवर्तन होना शुरू हो जाता है।

ब्रोजेर ओई जौलोद कालो
जे पौरोशे पौरोश होलो
लालोन बौले, मोनरे चौलो
जानिते शेई उपाशौना।।

ब्रज का वो काला कमली भी इसके मधुर स्पर्श से पारस हुआ, वो भी प्रेम–भक्ति के स्पर्श से मोहित हो जाता है। लालन फकीर कहते हैं कि रे मन! चलो उसी प्रेम–भक्ति की उपासना करें। प्रेम–भक्ति का स्पर्श अर्थात् हमारी फैली हुई संवेदनशीलता। अभी हम एकाग्रता में जी रहे हैं, हमारी संवेदनशीलता आंखों के द्वारा बह रही है, या कानों के द्वारा बह रही है, या अन्य इंद्रियों के द्वारा अलग–अलग दिशाओं में बह रही है। अगर हमें सर्व से जुड़ना है, अगर हमें विराट से जुड़ना है तो अपनी संवेदनशीलता को हमें फैलाना होगा। जैसे दीपक की बाती, दीपक की लौ सब तरफ फैली हुई होती है। टार्च की फोकस की तरह नहीं, दीपक के फैले हुए प्रकाश की तरह।

जब हम मां के गर्भ में थे तब हमारे भीतर इस तरह की संवेदनशीलता थी। जीवन के आरंभ में केवल हमारी त्वचा ही काम करती थी– 'सैलवाल'। बाकी इंद्रियां नहीं थीं। अमीबा के रूप में जब जीवन इस पृथ्वी पर आया तो वह एककोशीय जीव ही था, उसके पास अलग–अलग इंद्रियां नहीं थीं। संवेदनशीलता के लिए, केवल उसकी त्वचा ही सारे काम करती थी। और जैसे–जैसे विकास हुआ, यही त्वचा कहीं रिफाइंड होकर आंख बन गई, कहीं रिफाइंड होकर कान बन गई। यह जो जिह्वा या नासिका है, त्वचा का ही हिस्सा है।

त्वचा जैसी संवेदनशीलता चाहिए जो सर्वदिशाओं में फैली हुई हो। तब सर्वव्यापी परमात्मा को जाना जा सकता है। इसलिए स्पर्श का इतना महत्व है।

कुछ ऐसा समझो कि हम किसी घर के अंदर बैठे हैं। हमने एक खिड़की खोली तो उसके द्वारा प्रकाश हम तक आया। दूसरी खिड़की से आवाज सुनाई दी। तीसरी खिड़की

से सुगंध आई। नाक से सुगंध, आंख से रोशनी और कान के द्वारा हमारे भीतर संगीत आ रहा है। खिड़कियों की तरह हमारी केन्द्रित संवेदनशीलताएं हैं। लेकिन अगर हम इस मकान से बाहर निकल आएं तो प्रकाश की किरणें, सुगंध और ध्वनियां, सब हम पर इकट्ठी बरस जाती हैं। फिर हवाएं खिड़कियों से नहीं आतीं हम तक, हवाएं हमें चारों तरफ से लपेट लेती हैं और हमें सर्वत्र स्पर्श का आनंद मिलता है। जैसे किसी शिशु को पैदा होने के बाद कम्बल से लपेट दिया जाता है और वह जो सुरक्षा का अनुभव करता है, वह जो आनंद महसूस करता है ठीक ऐसे ही जब हमारी अकेन्द्रित संवेदनशीलता विकसित होती है तो पूरे अस्तित्त्व की सुरक्षा को हम महसूस करते हैं। पूरे अस्तित्त्व के प्रेम को हम महसूस करते हैं। और हम पर बरस जाती हैं प्रभु के आशीर्वाद की किरणें, अस्तित्त्व के प्रेम और अनुकम्पा की तरंगें।

एक बार परमगुरु ओशो से किसी ने पूछा– 'कहते हैं कि पारस लोहे के गुण–अवगुण का विचार किए बिना उसे शुद्ध सोना बना देता है। फिर ऐसा क्यों है कि आपके पास पहुंचकर भी मैं अतृप्त ही बना हूं? क्या आपकी कृपा के लिए पात्रता प्राप्त करनी होगी? '

ओशो ने उत्तर दिया–

'पहली बात, पारस लोहे को सोना बना देता है, मिट्टी के ढेले को रखकर देखा पारस के पास? लाख सिर पटके तो मिट्टी का ढेला सोना नहीं बनेगा। लोहा तो होना ही चाहिए न!

और लोहे में क्या गुण–दोष होते हैं, जरा मुझे बताओ! लोहा लोहा होता है। तुमने नरसी मेहता का भजन सुना है? – इक लोहा पूजा में राखत, इक रहत बधिक घर परो। तो नरसी मेहता सोचते हैं कि जो हत्यारे के घर पड़ा हुआ लोहा है, जिससे वह जानवरों की गर्दन काटता है, वह बुरा। और जो लोहा पूजा में रखते हैं, वह भला। क्योंकि पूजा में रखा है।

यह बात जंचती नहीं। क्योंकि बुराई अगर होगी तो बधिक में होगी, लोहे में क्या होगी? लोहा तो लोहा है। चाहे तुम हत्या करो लोहे से, तो लोहा हत्या नहीं कर रहा है, ध्यान रखना। इसलिए बुराई लोहे की हो नहीं सकती। यह दुर्गुण लोहे का नहीं है। यह तो जिसके हाथ में लोहा पड़ गया था, उसका दुर्गुण है। एक ही तलवार है, उससे तुम किसी की गर्दन काट सकते हो और किसी की कटती गर्दन को कटने से रोक भी सकते हो। कोई गुंडे हमला किए हुए हैं एक स्त्री पर और बलात्कार करने जा रहे हों और तुम्हारे हाथ में तलवार हो, तो तुम रोक दे सकते हो। तो तलवार उस कारण सज्जन न हो जाएगी। और किसी की हत्या कर दो तलवार से तो तलवार उस कारण दुर्जन न हो जाएगी। तलवार तो बस तलवार है। तलवार को क्या लेना–देना!

तो चाहे पूजा–घर में रखा हुआ लोहा हो और चाहे हत्यारे के घर रखा हुआ लोहा हो,

लोहे में कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए पारस के पास दोनों लोहे ले आओ तो दोनों ही सोना हो जाते हैं। लेकिन संत के पास हत्यारे को लाओ और पूजा करने वाले को लाओ तो फर्क पड़ेगा। दोनों लोहों में तो कोई फर्क था ही नहीं, दोनों लोहे थे। तुमने लोहे पर झूठे गुण आरोपित कर लिए। हत्यारे का गुण तुमने लोहे पर आरोपित कर लिया। वह हत्यारे की बात थी।

तो पहली तो बात तुम ठीक से समझना कि पारस लोहे को सोना कर सकता है, मिट्टी के ढेले को नहीं। और अगर तुम सोना न बन पा रहे हो तो थोड़ा विचार करना– लोहा हो? लोहा अगर हो, तो पात्र हो। तो बन जाओगे। अगर लोहा ही नहीं हो, तब बड़ी मुश्किल है।

तुम्हारा मन यह होता है कि किसी पर टाल दो जिम्मेवारी। तुम्हारा मन यह कहेगा कि अभी तक नहीं बने सोना, मतलब साफ है कि जिसको पारस समझा वह पारस नहीं है। यही तो आदमी का मन है, जो जिम्मेवारियां टालता है। तुम कुछ करना नहीं चाहते, अब तुम प्रतीक्षा करते हो कि अगर हो जाए तो ठीक, न हो तो पारस की जिम्मेवारी।

इसी को तो मैं मिट्टी का लोंदा होना कहता हूं। मिट्टी के लोंदे होने का मतलब है, कुछ भी करने को नहीं, पड़े हैं मिट्टी के लोंदे की तरह– गोबर–गणेश! लगते हैं गणेश जी जैसे, बिल्कुल गणेश जी जैसे लगते, मगर हैं गोबर के। मिट्टी के लोंदे का अर्थ है कि तुमने अपने जीवन को अपने हाथ में लेना नहीं सीखा। तुम थपेड़ों पर जी रहे हो। कोई कर दे, तुम बस बैठे हो। तुम भिखारी हो। कोई दे दे तो ठीक, कोई न दे तो गाली–गलौज। लेकिन तुम उठकर कुछ भी करने की तैयारी में नहीं हो। यह तुम मिट्टी के लोंदे हो। पारस भी तुम्हें कुछ न कर पाएगा।

थोड़ा उठो। थोड़ा करने में लगो। थोड़ा जीवन को बदलने के लिए श्रम, थोड़ा ध्यान, थोड़ी प्रार्थना, थोड़ी पूजा।'

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

चौथा प्रवचन

माया अर्थात् मन की विकृति

मोन, तोर आपोन बोलते के आछे।
तूमी कार काँदाय काँदो मिछे।।
शारा निशी देख मोनूराय
नानान पोक्खी ऐक बृक्खे रौय,
खाबार बैलाय के कारे कौय
देहो प्रान तेमनीं शे जे।।
थाक शे भौबेर भाई– बेरादौर
प्राण पाखीं शे नौय– आपोनार
पौरेर मायाय मोजिये एबार
प्राप्तो धौन हाराय पाछे।।
मिछे मायाय मौद खेयो ना
प्राप्तो– पौथ भूले जेओ ना
एबार गैले आर हौबे ना
पोड़बी कौय जूगेर पीछे।।
आश्ते ऐका आंलीं रे मोन
जेते ऐका जाबीं तो मोन
शिराज साँई बौले रे लालोन
तभी कार नाचाय नाचो मिछे।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

इस प्यारे बाउल गीत का भावार्थ इस प्रकार है– मन! तेरा कौन अपना है यहाँ? जिसके लिए मिथ्या ही, दिवा– निशी तू रोता है। एक वृक्ष पर कितने ही पंछी रहते हैं पर कौन किसको पूछता है? ये देह, प्राण भी वैसा ही है। जाने की बेला में कोई किसी का साथ नहीं देता।

इस संसार में सगे, भाई–बिरादर भी सगे नहीं हैं। प्राण– पंछी स्वयं का ही नहीं होता। रे मन! दूसरे की माया में पड़कर अमूल्य धन जो प्राप्त हुआ है उसे खो नहीं देना।

झूठे मद, माया में पड़कर सही मार्ग को भूलना नहीं, क्योंकि इस बार अगर खाली हाथ चले गये तो कई युग पीछे पड़ना होगा।

आया तो तू अकेला ही था रे मन! जाना भी तुझे अकेला ही होगा। संत लालन कहते हैंः मेरे गुरु शिराज साँई मुझे बोल रहे हैं, तुम किसके नचाये नाच रहे हो। झूठे फेर में मत पड़ो।

मोन, तोर आपोन बोलते के आछे।

तूमी कार काँदाय काँदो मिछे।।

ऐ मेरे मन! बोल, तेरा कौन है अपना यहां पर? मनुष्य संबंध बनाता है, अकेलेपन को मिटाने के लिए, फिर भी ये एकाकीपन नहीं मिटता। कितने ही संबंधों का विस्तार हो जाए, प्रियजनों की श्रृंखला कितनी ही लंबी हो जाए, संबंधों की श्रृंखला कितनी ही बड़ी हो जाए लेकिन ये अकेलापन फिर भी नहीं मिटता। ये एकाकीपन क्यों नहीं मिटता? बाहर के जितने भी संबंध हैं, चाहे कितना ही प्रगाढ़ प्रेम हो, कितनी ही करीबी हो लेकिन ये जो दूरी है ये मिटती नहीं है, बाहर एकता संभव ही नहीं है। बाहर दो हैं और सदा–सदा दो ही रहेंगे इसलिए ये दूरी कभी नहीं मिटती। और जब तक ये दूरी है तब तक ये एकाकीपन का एहसास नहीं मिटने वाला है। और एक एकाकीपन का एहसास मिटना भी नहीं चाहिए।

ये कैसा परिचय है, अपनों से परायों से,

हम खुद अजनबी हैं खुद अपने ही सायों से।

हम तो खुद से भी कितने अजनबी हैं, हमें पता नहीं है कि अगले पल हमारा मन क्या

डिसीजन लेने वाला है।

हम कितने ही अजनबी हैं खुद अपने ही सायों से,

लगते हैं निकट लेकिन दूरी नहीं है घटती,

यह नेह क्षितिज रेखा और–और परे हटती।

मिटती नहीं मिटाए, मिटती नहीं मिटाए हंसने से न आहों से।

चाहे रोओ, चाहे हंसो, चाहे दुखी हो लो, चाहे सुखी हो लो। लेकिन ये जो रेखा है यह कभी नहीं मिटती। ये कैसा परिचय है अपनों से, परायों से?

कहते हैं जिंदगी को सब लोग एक मेला,

भीड़ में मुझे हर कोई मिला अकेला।

भीड़ तो बहुत है लेकिन फिर भी सब अकेले हैं।

मेले हैं झमेले हैं सब स्वप्न कथाओं से,

हम कितने अजनबी हैं अपने ही सायों से।

जब हम स्वयं से ही अंजान हैं तो बाहर के परिचय, बाहर के संबंध कैसे हमारा एकाकीपन मिटा सकते हैं। इस एकाकीपन को मिटाने की तरकीब में जो लगा हुआ है, इस एकाकीपन को मिटाने के मार्ग पर जो चल पड़ा है वह संसारी है और जो इस एकाकीपन को उभारता है, इस कांटे को और–और चुभने देता है, यहां से साधना शुरू होती है। यहां से संन्यास का उदय होता है।

भगवान बुद्ध पूरे महल के विस्तार में देखा कि सारा पद है, सारा यश है लेकिन फिर भी मैं अकेला हूं, ये एहसास हमें स्वयं की खोज में ले जाता है। जब तक यह एहसास नहीं है तब तक परमात्मा की खोज शुरू नहीं होती, धर्म की खोज एकाकीपन के एहसास से शुरू होती है, परमात्मा की दिशा एकाकीपन के एहसास से मिलती है। तो इस एकाकीपन को और–और प्रगाढ़ता से देखना।

तूमी कार काँदाय काँदो मिछे।।

तुम किसके लिए रो रहे हो? किसके लिए रात–दिन रोते हो जब तुम्हारा कोई अपना है ही नहीं। हमारे सारे संबंध, सारे रिश्ते, सारे नाते एक स्वप्न जैसे हैं। दूर से सारे रिश्ते दिखते हैं लेकिन जैसे–जैसे हम पास जाते हैं पता चलता है कि संबंध जैसी कोई बात ही नहीं है। असली संबंध क्या है? जो हमारे असली वक्त पर काम आए। असली वक्त है मौत का समय। मौत के समय कौन सा संबंध काम आएगा। कबीर साहब क्या कह रहे हैं–

रे मन तेरो कोइ नहीं खिंचि लेइ जिनि भारु।

बिरख बसेरो पंखि को तैसो इहु संसारु।।

राम रसु पीआ रे। जिह रस बिसरि गए रस अउर।।
अउर मुए किआ रोईए जउ आपा थिरु न रहाइ।
जो उपजै सो बिनसि है दुखु करि रोवै बलाइ।।
जह की उपजी तह रची पीवत मरदन लाग।
कहि कबीर चिति चेतिआ राम सिमरि बैराग।।

ऐ मेरे मन! तेरा कौन अपना है जो अंतिम समय में तेरा साथ दे दे। ये सारे संबंध ऐसे हैं जैसे एक वृक्ष है और इस वृक्ष पर रात को बहुत सारे पक्षी आकर अपना बसेरा करते हैं, सबका अपना–अपना एक घोंसला हैं। लेकिन जैसे ही सुबह होती है, खाने का समय होता है, वे सब अपनी–अपनी दिशा में उड़ जाते हैं। ऐसे ही इस संसार में हम आए हैं, वेश लेकर आए हैं, शरीर लेकर आए हैं और इस संसार रूपी वृक्ष में सब साथ–साथ रहते हैं लेकिन जब मृत्यु आती है तो ये प्राण पक्षी, ये किसी की चिंता नहीं करता। न तो दूसरा पक्षी इसका साथ दे सकता है, इसे अकेले ही उड़ना होता है।

खाबार बैलाय के कारे कौय
देहो प्रान तेमनी शे जे।।

यहां से सबको अकेले ही जाना होता है।
जिन्दगी की राहों में रंजो गम के मेले हैं
भीड़ है कयामत की और हम अकेले हैं।
आईने के सौ टुकड़े करके हमने देखे हैं
एक में भी तन्हा थे, सौ में भी अकेले हैं

लगता है कि संबंधों का एक तूफान, भीड़ का एक तूफान है लेकिन फिर भी हम अकेले हैं। चाहे किसी भी परिस्थिति में हों, हम हमेशा अकेले ही हैं। कबीर साहब चादर बेचने के लिए प्रतिदिन बाजार जाते हैं और चादर बेचते हुए बाजार का तमाशा भी देखते हैं। देखते हैं कि एक बच्चा अपनी मां के साथ बाजार में सब्जी खरीदने के लिए जाता है, बच्चे ने मां का पल्लू पकड़ा हुआ है और मां सब्जी खरीदने में व्यस्त है। बच्चा अचानक एक बिल्ली देखता है और उसी के साथ में खेलने लगता है, खेल में बिल्कुल मस्त हो जाता है। मां भी सब्जी खरीदने में बिल्कुल व्यस्त है, अब तो वह अपने बच्चे को भूल ही गई और दूर निकल गई। कबीर साहब दूर से ही ये सारा तमाशा देख रहे हैं। अब बिल्ली अचानक वहां से भाग जाती है, अब बच्चा अकेला हो गया तब मां की याद आई, वह सोचा अरे मां

कहां गई और चीख मारकर रो देता है। कबीर साहब दूर से सब देख रहे थे। और कहते हैं कि ऐसी ही हमारी हालत है। हम भी संसार के खिलौनों में से ऐसे ही खेल रहे हैं। जब कोई खिलौना टूट जाता है तब हम चीखते हैं कि अरे, कैसे हम इन खिलौनों में उलझे रहे, कैसे प्रभु हम तुम्हें भूले रहे, इस संसार में मैं अकेला हूं, आओ प्रभु और मेरा साथ दो, तुम मेरा सहारा बनो, मेरे अकेलेपन को मिटाओ। यहीं से परमात्मा का पद शुरू हो जाता है। लेकिन हम क्या करते हैं? एक खिलौना टूटता है तो हम दूसरे खिलौने से उलझ जाते हैं, फिर दूसरा टूटा तो तीसरा खिलौना मिल जाता है लेकिन हर खिलौना टूटता है। इसीलिए धन, मद, पद, धन की मदिरा, पद की मदिरा। इन चीजों को मदिरा क्यों कहा है और सारे धर्म धन के विरोध में हैं। मदिरा के विरोध में क्यों हैं? क्योंकि ये जो धन, मद है, ये हमारे एकाकीपन को भुलाने में सक्षम हो जाता है, थोड़ी देर के लिए हम भूल जाते हैं कि अकेले हैं। ऐसे ही पद के नशे में हम भूल जाते हैं कि हम अकेले हैं। और जब तक इस नशे में हम रहेंगे, जब तक हम भूले रहेंगे कि हम अकेले हैं। तब तक परमात्मा की याद से वंचित रहेंगे, परमात्मा की याद से दूर रहेंगे। तो ये जो मद है, ये हमें अधर्म की ओर ले जाता है। ये जो संबंधों का नशा है, ये हमें स्वयं से दूर ले जाता है, परमात्मा से विमुख कर देता है।

आइए, परमगुरु ओशो को सुनते हैं–

'माया तो एक है, माया मनहिं समाय। तीन लोक संशय पड़ा काहिं कहूं समझाय।।

और माया के संबंध में इतने सिद्धांत गढ़े गए कि भारत का पूरा अतीत–इतिहास माया के संबंध में सिद्धांतों से भरा है।

इसलिए कबीर कहते हैं, तीन लोक संशय पड़ा, काहिं कहूं समुझाय।

किसको समझाएं? लोग बड़ी चर्चा कर रहे हैं। बड़े तत्त्व विचार कर रहे हैं, माया के बड़े सिद्धांत गढ़ रहे हैं। तुम्हारा सिद्धांत गलत और मेरा ठीक, इसके लिए बड़े तर्क जुटा रहे हैं, शास्त्रों का उल्लेख कर रहे हैं। किसको समझाऊंः तीन लोग संशय पड़ा।

और बात बड़ी सीधी और सरल है। माया को कहीं और खोजने जाने की जरूरत नहीं। मन माया तो एक है। मन का ही विस्तार माया है।

माया मनहिं समाय।

और माया को नष्ट नहीं करना पड़ता। जैसे तुमने पहचाना कि माया मन में ही समा जाती है। माया मन की विकृति है, मन की अप्राकृत दशा है।

क्या है बीमारी?

बीमारी के लिए भी एक चीज जरूरी है कि तुम ज़िंदा रहो। मरे हुए आदमी को कोई बीमारी नहीं होती। मरे बड़े लाभ में हैं; अगर कोई बीमारी न होती तो बीमारी का भय भी नहीं होता; चिकित्सक के द्वार पर उन्हें दस्तक भी नहीं देनी पड़ती; इलाज की परेशानी से भी नहीं गुजरना पड़ता। मरों का लाभ बड़ा है। अब दोबारा वे मर भी नहीं सकते, इसलिए मरने का कोई भय नहीं होता।

बीमारी के लिए एक बात जरूरी है कि स्वास्थ्य हो, जीवन हो। बीमारी बिना जीवन के नहीं घट सकती। इसका यह अर्थ हुआ कि बीमारी जीवन की ही एक विकृति है। जीवन ही कहीं उलझ गया है।

आश्ते ऐका आंली रे मोन

जेते ऐका जाबी तो मोन

शिराज साँई बौले रे लालोन

तभी कार नाचाय नाचो मिछे।।

तुम किसके नचाये नाच रहे हो, तुम किसलिए ऐसे भाग रहे हो, इस एकाकीपन को मिटाने के लिए आदमी भागता जा रहा है संबंधों में और उलझता जा रहा है माया में। माया क्या है? माया है हमारे भीतर की मूर्छा, हमारे भीतर बेहोश होने की जो प्रक्रिया है इसका नाम माया है। माया का अर्थ है जो है नहीं वह दिखाई देने लगे, जो है नहीं वह महसूस होने लगे। और माया को तोड़ने का उपाय है ध्यान। एक मात्र उपाय है मूर्छा को तोड़ने का वह है ध्यान। जागकर जब हम देखते हैं तो पाते हैं बाहर संसार नहीं है, बाहर परमात्मा है। जागकर जब हम भीतर देखते हैं तो पाते हैं कि एकाकीपन नहीं है, भीतर भी परमात्मा है। सब जगह परमात्मा है। दूसरा कोई है ही नहीं तो फिर अकेलेपन का सवाल ही नहीं है। अहं ब्रम्हास्मि। मैं ही हूं इस जहां में, दूसरा कोई नहीं।'

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

पांचवां प्रवचन

सर्वप्रथम खुद को पहचानो

खैपा तूई ना जेने तोर आपोन खौबोर
खैपा तूई ना जेने तोर। आपोन खौबोर जाबि कोथाय।
आपोन घौर ना बूझे, बाइरे खूँज़े। पोड़बी बॉधाय।।
आमि शोत्यो ना होले, हौय गुरु शोत्यो कोन काले
आमि जेरूप देखि नाइ, शेरूप दीन दौयामौय।।
आत्तारूपे शेई औधोर, शोंगीं औंशें कौला तार
भेद ना जेने बोने–बोने, फिरले की होय।।
आपोनारे आप्नी चिनीने, किरूप आछि कोनखाने
लालोन बौले, ओन्तिमकाले नाइरे उपाय।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

इस प्यारे बाउल गीत का भावार्थ इस प्रकार है– रे पगले! स्वयं की खबर तू जाने ना, फिर कहाँ भटकेगा? पहले अपना घर कहाँ है जान ले, नहीं तो भूल– भुलैया में फंसेगा और भटकता फिरेगा।

कौन है तू और कहाँ तुझे जाना है इसे तो पहले जान ले नहीं तो भूल– भुलैया में फंसकर भटकता फिरेगा। स्वयं का सत्य जाने बिना गुरु– सत्य को नहीं जाना सकता। जिस रूप को कभी देखा नहीं उसके बारे में क्या कहोगे? सत्य को जाने बिना दीन– दयामय, दयाल प्रभु के स्वरूप को कैसे पहचानोगे?

परमात्मा के अनेक अंश एवं कलाएं हैं, उन सबको जाने बिना दर–दर भटकने से क्या होगा।

स्वयं को तो अब तक जान न पाये, कहाँ और किस रूप में हैं, इसलिए तो संत लालन फकीर कहते हैं, उस परम् सत्य को जान ले नहीं तो अंतिम समय में उपायहीन रह जायेगा और फिर भटकना होगा।

खैपा तूई ना जेने तोर आपोन खौबोर

खैपा तूई ना जेने तोर। आपोन खौबोर जाबि कोथाय।

आपोन घौर ना बूझे, बाइरे खूँजे। पोड़बी बॉधाय।।

परमात्मा को जानने के पहले, स्वयं को जानना जरूरी है। पागल! तू जानता ही नहीं कि तू कौन है और तू जानने निकला है कि परमात्मा कौन है? स्वयं का सत्य जाने बिना, स्वयं का स्वरूप जाने बिना परमात्मा के स्वरूप को जानने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन किसी की भी उत्सुकता स्वयं को जानने में नहीं है, सबकी उत्सुकता दूसरों को जानने में है। दूसरों को जानने से विज्ञान का जन्म होता है लेकिन धर्म का जन्म स्वयं को जानने से होता है। ये जो चेतना की दिशा बाहर की ओर मुड़ रही है, ये जो जिज्ञासा, ये जो कौतुहल बाहर की ओर उठ रही है इसे अपने स्वयं के भीतर की ओर ले जाना होगा, अगर सत्य को जानना है तो स्वयं को पहचानना होगा। क्यों? क्योंकि पहले निकटतम को जानना होगा तभी हम दूर की चीजों को जान सकते हैं।

नजरें तो टिकी हुई थीं चांद और सितारों पर,
खुद अपने ही आंगन की जमी पर फिसल गए।
किस्मत को दोष दे अब या गफलत को यारो,
कई मंसूर और रूमी इसी जहां में समा गए।।

कई लोगों ने इसी जहां में अपने आपको खोकर सबकुछ पा लिया। वे भी हमारे जैसे ही लोग थे। क्या फर्क था उन में और हम में? उनकी उत्सुकता स्वयं में थी और हमारी उत्सुकता दूसरों में है। यही बेसिक चीज है। और जिस दिन हमारी उत्सुकता स्वयं की ओर लौटती है उसी समय से परमात्मा की ओर जाने की दिशा तय हो गई। जिस दिन कोई स्वयं से परिचित हो जाता है उस दिन वह सबके बारे में जान लेता है, सारे जगत के बारे में जान लेता है। पहले स्वयं को जानो फिर जान पाओगे कि सारे जगत का रहस्य क्या है।

आमि शोत्यो ना होले, हौय गुरु शोत्यो कोन काले
आमि जेरूप देखि नाइ, शेरूप दीन दौयामौय।।

कौन है तू और कहां तुझे जाना है पहले इस बात को जान ले। शंकराचार्य कहते हैं–

तुम कौन हो आए कहाँ से हो, माता है कौन, है पिता कौन,
यह जगत है क्या, इन प्रश्नों का उत्तर खोजो, हो गहन मौन;
अब ब्रह्म–जगत का भेद तजो, गोविंद भजो, गोविंद भजो।

तुम कौन हो और कहां से आए हो इन प्रश्नों का उत्तर बाहर नहीं मिलता, इन सवालों का जवाब ढूंढ़ने के लिए हमें अपने भीतर जाना होगा, मौन में डूबना होगा। शास्त्रों में इसका उत्तर नहीं मिलेगा, जीवन में इसका उत्तर मिलेगा। जिन्होंने भी किताबों में इसका उत्तर खोजा वे उलझकर रह गए, वे अज्ञानी से ज्यादा अंधकार में भटककर रह गए। परमात्मा को जानने की आधारभूत शर्त क्या है? आधारभूत शर्त है कि स्वयं को जानो। स्व को जान लिया तो हमने सर्व को जान लिया। परमगुरु ओशो कहते हैं स्व को जाने बिना सर्व को जानना असंभव है। पहले स्व को जानो फिर सर्व को जानना घटित होता है। और सिर्फ एक ही सूत्र है। ऐसा सत्य जो हमें चारों ओर से घेरे हुए है, जो हममें सांस ले रहा है, जिसके कारण ये सांस चल रही है, जिसके कारण हम चजिंदा हैं और प्रतिपल जिससे घिरे हुए हैं वैसे सत्य का उद्घाटन होता है। जब हम अपने स्वयं के भीतर जाते हैं तब हम इस स्वरूप को पाते हैं और तभी हर सवाल का जवाब मिल जाता है कि मैं कौन हूं, मैं कहां से आया हूं। इन प्रश्नों का उत्तर बाहर खोजोगे तो भटकोगे।

कुछ ऐसा ही होगा कि जैसे किसी ने अपने घर पर एक मेहमान को बुलाया और मेहमान की आंखें नहीं थीं, अंधा था। तरह–तरह के व्यंजन बनाए थे और खिलाए। अंधे ने बहुत चाव से खाया। अंधे को एक व्यंजन बहुत पसंद आया, वह था खीर। उसने पूछा कि यह कैसे बनता है? इसके बारे में हमें भी बताएं। उस आदमी ने बताया कि ये खीर है जो कि दूध से बनती है। अब अंधे को उत्सुकता हो गई कि दूध कैसा होता है? बताया गया कि दूध

बगुले की तरह सफेद रंग का होता है। अब वो अंधा बोलने लगा कि बगुला कैसा होता है? बगुला बताने के लिए उस आदमी अपना हाथ मोड़कर उस अंधे को समझाया कि ऐसा होता है बगुला। अब अंधा खुश हो जाता है कि अच्छा–अच्छा ये होता है सफेद रंग और ऐसा होता है दूध, मुड़े हाथ की तरह दूध होता है। बात बिल्कुल निरर्थक हो गई। ऐसे ही निरर्थक बातों में लोग उलझे हुए हैं। तो अनुभव को बताया नहीं जा सकता, सत्य के लिए आंखें खोलनी होंगी। एक आंख है जो बाहर देखती है। ठीक है इन आंखों के बिना तो जीवन बहुत कठिन है लेकिन एक और आंख है जो भीतर का सत्य देखती है। जब तक वह आंख नहीं खुलती तब तक सत्य का उद्घाटन नहीं हो सकता। जिस दिन वह आंख खुलती है सत्य का उदघाटन हो जाता है। उस आंख में ज्ञान का पर्दा लगा हुआ होता है, ज्ञान के पर्दे को जब हम हटाते हैं और बिल्कुल एक बच्चे की तरह जब हम इस जगत को देखते हैं तब पाते हैं कि वह प्रकाश, वह परमात्मा का आलोक सामने ही है, बस हम देखने से वंचित थे बस। शास्त्रों में नहीं खोजना है सत्य को, जीवन में खोजना है।

आत्तारूपे शेई औधोर, शोंगी औंशें कौला तार
भेद ना जेने बोने–बोने, फिरले की हौय।।

परमात्मा के अनेक अंश एवं कलाएं हैं, सबका भेद जाने बिना दर–दर भटकने से क्या होगा। सूफी कहते हैं–

नाम ही नाम ले लिया जानते उसे वाकई नहीं
कहते हो खुदा खुदा देखा उसे कभी नहीं
ऐसे खुदा की बंदगी कुफ्र है बंदगी नहीं
खाली जो गुजरे इक नफस मौत है जिंदगी नहीं

परमात्मा को जाने बिना परमात्मा का नाम रटने से क्या होगा, राम–राम करने से बात बनने वाली नहीं जब तक कि हमने राम को नहीं जाना। और राम को जानने के लिए हमें गुरु के द्वार जाना होगा। गुरु के द्वार पर जब हम जाते हैं, जब हम अपने अहंकार को गलाते हैं तब हमें राम का परिचय गुरु देता है और राम से परिचित कराता है। याद रखना, जब तक अहंकार है तब तक राम नहीं है, जब राम है तब अहंकार नहीं है। और अहंकार को गलाने वाला गुरु से बड़ा मंत्र कोई नहीं है। आइए, परमगुरु ओशो को सुनते हैं–

'तत्त्वमसि! तब फिर तुम वही हो जो परमात्मा है। फिर जरा भी भेद नहीं। भेद कभी था भी नहीं। तुमने ही भ्रांति बना ली थी तो भेद हो गया था। तुमने ही एक लक्ष्मण रेखा खींच रखी थी अपने चारों तरफ और मान लिया था कि इसके बाहर नहीं जा सकता हूं। बस, मानने की बात थी, ख्याल रखना। लक्ष्मणरेखाएं किसी को रोक नहीं सकतीं। बस, मानने

की बात है। और अगर मान लो तो रोक लेती हैं।

अहंकार सिर्फ एक मानी हुई भ्रांति है जो बचपन से हमें समझायी गई है कि तुम हो; तुम अलग हो; कि तुम भिन्न हो; कि तुम्हें कुछ दुनिया में करके दिखाना है; कि तुम्हें नाम छोड़ जाना है; कि इतिहास में तुम्हें अपने चिह्न छोड़ जाने हैं, ऐसे ही मत मर जाना, यह लक्ष्मणरेखा गहरी हो गई है।

इस लक्ष्मणरेखा को मिटाने के लिए कुछ उपाय खोजने जरूरी हैं।

गुरु के चरणों में सिर रखना बहुत उपायों में एक उपाय है और बहुत कारगर उपाय है। क्योंकि मंदिर की मूर्ति के सामने भी तुम सिर रख सकते हो लेकिन कारगर नहीं होगा। क्योंकि मंदिर पत्थर की मूर्ति है, उसके सामने झुकने में तुम्हारे अहंकार को चोट नहीं लगती। जब तुम अपने ही जैसे मांस–मज्जा के बने हुए मनुष्य के सामने झुकते हो तब चोट लगती है। पत्थर के सामने झुकने में कोई अड़चन नहीं है। आकाश में बैठे परमात्मा के सामने झुकने में कोई अड़चन नहीं है। कृष्ण, राम, बुद्ध, अतीत में हुए सत्पुरुषों के सामने झुकने में कोई अड़चन नहीं है। लेकिन तुम्हारे सामने जो मौजूद हो, तुम्हारे जैसा हो, भूख लगती हो, प्यास लगती हो, सर्दी–धूप लगती हो, बीमार होता हो, बूढ़ा होता हो, ठीक तुम जैसा हो, उसके सामने झुकने में बड़ी अड़चन होती है। अहंकार कहता है इसके सामने क्यों झुकूं? यह तो मेरे जैसा ही है। मुझमें–इसमें भेद क्या है? अहंकार बचाव करता है। इसलिए जीवित सदगुरु के सामने जो झुक गया उसका अहंकार तत्क्षण गिर जाता है। मगर यह मत सोचना कि सिर्फ झुकने से गिर जाता है। झुकना औपचारिक भी हो सकता है– जैसा इस देश में है।

इस देश में झुकना औपचारिक हो गया है। लोग झुक जाते हैं, झुकने का कोई ख्याल ही नहीं आता। झुकते रहे हैं। जो आया उसके सामने झुकते रहे हैं। झुकना एक शिष्टाचार हो गया है। जैसे पश्चिम में लोग हाथ मिलाते हैं, ऐसे यहां लोग पैर पड़ लेते हैं। जैसे नमस्कार करते हैं ऐसा पैर पड़ लेते हैं।

आपोनारे आप्नी चिनीने, किरूप आछि कोनखाने
लालोन बौले, ओन्तिमकाले नाइरे उपाय।।

अंतिम काल में कोई उपाय नहीं बचता, जीवन रहते अगर हमने स्वयं को नहीं पहचाना तो फिर हमें इस जीवन की बाजी को हार कर जाना होगा। ज्ञान की पहली किरण स्वयं से प्रकट होती है और धीरे–धीरे वह सर्व पर फैल जाती है और जो स्वयं को नहीं जानता है उसके लिए ईश्वर केवल नाममात्र है। ईश्वर की अनुभूति उसे कभी भी नहीं हो सकती।'

धन्यवाद। हरिं ओम तत्सत्।

छठवां प्रवचन

स्वयं को जानना- सच्ची उपासना

बौल कारे खूँजिश खैपा देश बिदेशे।
आपोन घौर खूँले। रौतोन पाय औनायाशे।।
दौड़दोड़ी दिल्ली– लाहोर
आपोनार कोले रौय घोर
निरूप आलेक साँई मोर
आत्तोरूप शे।।
जे लीले ब्रोम्हांडेर पौर
शेई लीले भांडो– माझार
ढाका जैमोन चौन्द्रो आकार
मेघेर पाशे।।
आपोनाके के आप्नि चेना
शेई बौटे उपाशौना
लालोन कौय आलेक चेना
होय तार दिशे।।

मेरे प्रिय आत्मन्, नमस्कार।

इस प्यारे बाउल गीत का भावार्थ इस प्रकार है– रे पागल! किसे तू देश–विदेश में खोजता फिर रहा है? स्वयं में तो झाँककर देख एक बार, यहीं अनायास तुझे रतन मिलेंगे। बेकार का भटकना छोड़ और अंतर में खोज। तेरे ही पास तो सब कुछ है, फिर दिल्ली, लाहौर क्यों दौड़ता फिर रहा है? वह निराकार सत्य रूप साँई तेरी आत्मा में ही बैठा है। जो लीला ब्रम्हाण्ड में चल रही है वही लीला तेरे शरीर रूपी घट में चल रही है। चन्द्रमा जैसे बादल के बीच ढ़ंका रहता है वैसे ही वह निरूप, निराकार सत्य तेरे अंदर छुपा है। स्वयं को पहचानना और स्वयं में छुपे उस परम् सत्य की उपासना ही सच्ची उपासना है। संत लालन फकीर कहते हैं कि उसी परम सत्य को जानना ही तेरी दिशा है। उसी लक्ष्य को तू जानकर परम् सत्य को जान ले।

बौल कारे खूँजिश खैपा देश बिदशे
बौल कारे खूँजिश खैपा देश बिदेशे।
आपोन घौर खूँले। रौतोन पाय औनायाशे।।

पागल! तू किसे देश–विदेश में खोज रहा है। सभी खोज में व्यस्त हैं। संसार में जब हम आते हैं तो खोज शुरू हो जाती है। और खोज संन्यासी भी रहा है और खोज संसारी भी रहा है।

जाने किसकी तलाश जारी है, क्या खूब ख्वाइश हमारी है,
किसी सिंदूर से कभी न भरी, मांग उम्मीदों की रही सदा क्वांरी है।
पाया कितना मगर ये खाली रहा, दिल तो जादू की एक पिटारी है।
पैर तो थक–थक कर चूर हुए, अब उम्मीदों की ये बारी है,
नशा ऐ जुस्तजू में चलती हुई, चुग गई जिंदगी बेचारी है, जाने किसकी तलाश जारी है।

पता भी नहीं है कि हम क्या खोज रहे हैं। संसार में लोग आनंद की तलाश में बाहर–बाहर ठिकाना ढूंढ़ रहे हैं। धन में, पद में, संबंधों में और थक–हार कर पाते हैं कि कण के समान रस मिला लेकिन बड़ा–बड़ा दुख भी मिला। थोड़ी सी सुख की झलक तो मिलती है लेकिन बाद में दुख का पहाड़ टूट पड़ता है। थक–हार कर परमात्मा को खोजने निकलते हैं और संन्यासी बन जाते हैं, फिर भी बाहर ही परमात्मा को खोज रहे हैं।

कोई काशी में, कोई काबा में, कोई किताबों में, कोई ग्रंथों में, कोई कर्म–काण्ड में लेकिन सबका उलझाव बाहर ही है। दोनों की दिशा बाहर है। संसारी भी बाहर ढूंढ़ रहा है और संन्यासी भी बाहर ढूंढ़ रहा है। और लालन फकीर क्या कहते हैं पागल! तू देश–विदेश में किसको खोज रहा है। तू जिसे खोज रहा है वह एक ही जगह है वह है स्वयं में, स्वयं के घर में खोज, वहीं तुझे यह परम रतन, यह आनंद मिल जाएगा। कबीर साहब जिसके लिए कहते हैं–

मोको कहां ढूंढ़े रे बंदे मैं तो तेरे पास में,
न मैं देवल न मैं मस्जिद न काबे कैलाश में।
न तो कौनो क्रिया–कर्म में नहीं जोग–वैराग में,
खोजी होंय तो तुरतय मिलिहों पल भर की तलाश में।
कहे कबीर सुनो भाई साधो दो सांसों की सांस में।

कबीर साहब कहते हैं कि अगर खोजने वाला हो, अभी पा सकता है। दो सांसों के बीच में जो गैप है उसे पकड़ना जिसे आ जाए, यानि जिसे ठहरना आ जाए। परमात्मा दौड़ने से नहीं मिलता है, परमात्मा ठहरने से मिलता है। परमात्मा क्रियाओं से नहीं मिलता है, परमात्मा निष्क्रिय होने से मिलता है।

रुको तो मंजिलें ही मंजिलें हैं चलूं तो रास्ता कोई नहीं है।

मैं ऐसे जमघटे में खो गया हूं, जहां मेरे सिवा कोई नहीं है।

कितना भी चलते जाओ मंजिल तक नहीं पहुंच पाओगे, ऐसा कोई रास्ता नहीं चलने पर जो परमात्मा तक ले जाए। हर रास्ते एक दिन थका देते हैं, एक दिन उबा देते हैं और जब हम थककर चूर-चूर हो जाते हें और जब रुकते हैं तो पाते हैं कि परमात्मा तो यहीं मौजूद है, परमात्मा से हम घिरे ही हुए हैं, परमात्मा हममें ही जी रहा है, हम परमात्मा में जी रहे हैं, न हम उसके बिना हो सकते न परमात्मा हमारे बिना हो सकता।

बाउल फकीर कहते हैं जो लीला ब्रम्हाण्ड में चल रही है वही लीला देह में चल रही है।

जे लीले ब्रोम्हांडेर पौर

शेई लीले भांडो- माझार

जो ब्रम्हाण्ड में है वही पिंड में है।

जैसे एक बीज में पूरा वृक्ष छुपा हुआ होता है लेकिन बीज को देखकर तो कोई नहीं कहेगा, बीज को देखकर तो पता भी नहीं चलेगा कि एक महान वृक्ष इसमें मौजूद है। पूरी जैनेटिक संरचना एक भ्रूण के अंदर मौजूद होती है कि किसी तरह का होगा, कैसा दिमाग होगा, पूरी भ्रूण संरचना मौजूद होती है। ऐसे ही इस पूरे ब्रम्हाण्ड में परमात्मा का विराटतम रूप मौजूद है, वही हमारे भीतर भी मौजूद है। लेकिन हम अगर अपने से बाहर खोजने जाएंगे तो नहीं मिलेगा। पहले इस शरीर रूपी घट में उसकी अनुभूति हो जाए उसके बाद तो पूरे ब्रम्हाण्ड में वही-वही है। संसार में जब कोई व्यक्ति परमात्मा को खोजने निकलता है तो वह भटक जाता है। संसार में दौड़ने से चीजें मिलती हैं, संसार में दौड़ने से मंजिल मिलती है और ऐसा ही लोग अध्यात्म के बारे में सोचते हैं कि बाहर खोजूंगा तो परमात्मा मिल जाएगा। मनुष्य सोचता है कि दौडूंगा, तप करूंगा, साधना करूंगा, काशी जाऊंगा, कैलाश जाऊंगा। कबीर साहब कहते हैं-

घूंघट के पट खोल तोहे पिया मिलेंगे।

ढाका जैमोन चौन्द्रो आकार

मेघेर पाशे।।

जैसे चंद्रमा बादलों से ढंक जाता है ऐसे ही सत्य हमारे भीतर ढंका हुआ है। सत्य का आविष्कार नहीं करना है, सत्य का अनावरण करना है। हमारी व्यस्तताओं ने, हमारी दौड़ ने उस सत्य को छुपाकर रखा है, आवरण करके रखा है इसलिए इसका अनावरण करना होगा। ये व्यस्तताएं हैं शारीरिक जिसमें कि लोग क्रियाकांड में उलझे हुए हैं, मानसिक व्यस्तता किताब में, ग्रंथ में, सोच-विचार में, चिंतन-मनन में लोग उलझे हुए हैं लेकिन चिंतन-मनन से परमात्मा नहीं मिलता है। फिर हार्दिक व्यस्तताएं हैं, लोग भक्ति में उलझे हुए हैं और बाहर की भक्ति में। पूजा कर

रहे हैं, आरती कर रहे हैं, उपासना कर रहे हैं लेकिन यह भी बाहर से चल रही है। बाहर को छोड़कर भीतर आना होगा। तेरे ही पास तो सबकुछ है फिर दिल्ली–लाहौर क्यों दौड़ता फिर रहा है। वह निराकार सत्य तेरी आत्मा में ही बैठा हुआ है।

एक बार एक मुसलमान राजा अपने महल में सो रहा होता है। देखता है कि उसके छत में चलने की आवाज आ रही है। वह बोलता है कि ऊपर छत पर कौन है, कौन दौड़ रहा है? वह बोला कि मैं एक फकीर हूं और छत पर इसलिए दौड़ रहा हूं कि मेरा ऊंट खो गया है। राजा बोला कि तुम तो पागल लगते हो, फकीर थोड़ी हो, नीचे आओ। फकीर नहीं आता है। फकीर ने कहा कि जब तुम संसार में खोज रहे हो रस, संसार में खोज रहे हो आनंद, संसार में खोज रहे हो तृप्ति तो मैं छत पर ऊंट क्यों नहीं खोज सकता। और याद रखना, मुझे छत पर कभी ऊंट मिल भी सकता है लेकिन तुम जो संसार में खोज रहे हो तृप्ति वह कभी नहीं मिल सकती। राजा ने उस फकीर के पास खुद जाना उचित समझा और फिर राजा खुद उस फकीर के पास गया और उसके चरणों में गिर पड़ा। और एक दिन वह राजा खुद फकीर हो गया, इब्राहिम उसका नाम है।

परमात्मा विराट है, असीम है, अगम है, अगोचर है और हम उसे सीमा में खोज रहे हैं। हर एक की खोज उस विराट में होती है और उस विराट को हम एक में खोजते हैं इसलिए हम असफल हो जाते हैं। उस विराट को खोजना है तो क्षुद्र में नहीं खोजना होगा, सीमा में नहीं खोजना होगा, उस असीम को असीम में ही खोजना होगा और उस असीम की ज्योति अपने भीतर ही प्रज्वलित होती है।

ज्यों तिल माही तेल है चकमक माही आग,
तेरा सांई तुझमे है जान सके तो जान।

स्वयं को पहचानना और स्वयं में छुपे उस परम तत्त्व की उपासना ही सच्ची उपासना है।

आपोनाके के आप्नि चेना
शेई बौटे उपाशौना
लालोन कौय आलेक चेना

उपासना क्या है? उपासना का अर्थ है हम अपने पास आ गए, हम अपने निकट आ गए। सच्ची उपासना है जब हम अपने भीतर जाते हैं, जब हम अपने निकट आते हैं। जैसे उपवास का अर्थ है कि हम अपने पास ही वास करते हैं ऐसे ही उपासना है। जब हम अपने पास आते हैं, अपने पास विराजमान होते हैं यही सच्ची उपासना है। और इस सच्ची उपासना से परमात्मा मिल जाता है। और इस सच्ची उपासना के लिए हमें भगवान को नहीं खोजना है, हमें अपने भीतर भक्ति जगानी है और जिस दिन यह भक्ति जाग जाएगी, जिस दिन यह फूल खिल जाएगा उस दिन हम जान जाते हैं कि परमात्मा तो हमारे भीतर ही है। हम कब से आवाज दे रहे थे–

हरि गीत गा रहा है क्या याद है, बंशी बजा रहा है क्या याद है?

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

सातवां प्रवचन

दासभाव है समर्पण का सूत्र

आमारे कि राखबेन गुरु चौरोनदाशी
ईतौरपाना कार्जो। आमार ओहोर्निशि।।
जौठोर जौंत्रोणा पेये।
एलाम जे कौड़ार दिंये रोईलाम ता।
शौकोल भूलिये एई भौबे आशी।।
गुरु बोस्तु चिनले ना मोन
औशोमौय की कोरबी तौखोन घूरते बूझी।
होलोरे मोन चौउराशी
गुरु जारे थाके शौदौय शौमोन बोले तार।
किशेर भौय लालोन बौले।
मोन तूई आमाय कोरली दूषी।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

इस प्यारे बाउल गीत का भावार्थ इस प्रकार है– मेरे सद्‌गुरु क्या मुझे अपनी चरणदासी बनाकर रखेंगे? मेरा कार्य अहर्निशी बहुत ही ओछा है फिर भी क्या गुरु अपने चरणों में रखेंगे?

बहुत यंत्रणा पाकर एक वादा करके इस संसार में आई थी और यहाँ आकर सब कुछ भूल बैठी। गुरु नाम, गुरु वस्तु अब तक ना जान सकी। असमय, अंतिमकाल क्या करेगा रे मन! ऐसा जान पड़ता है रे मन! फिर कहीं चौरासी के फेर में न पड़ना पड़े।

गुरु जिस पर दया करते हैं उसे शमन का भय नहीं रहता। लालन कहते हैं मन! अब तू दोषी मत बना, समय रहते सचेत हो जा। दूसरे को दोषी मत बना। किसी को दोष देने से अब कोई फायदा नहीं।

आमारे कि राखबेन गुरु चौरोनदाशी
ईतौरपाना कार्जो। आमार औहोर्निशि।।

बाउल साधना है भक्तों की साधना और भक्ति है प्रेम का उत्कर्ष। इस जगत में प्रेम के जो भी नाते हैं उन सारे नातों को भक्त परमात्मा पर आरोपित करता है। एक नाता है माता–पिता का तो भक्त परमात्मा को माता–पिता मानता है। त्वमेव माता च पिता त्वमेव, तुम्हीं हो माता, तुम्हीं पिता हो। एक नाता गुरु भाव का होता है, परमात्मा वाहे गुरु है। इसके अलावा परमात्मा प्रियतम है, कृष्ण के भक्त परमात्मा को प्रियतम मानते हैं। एक मात्र पुरुष हैं इस अस्तित्त्व में वो हैं कृष्ण और वही सबके प्रियतम हैं।

बंगाल में एक सखी संप्रदाय है वहां के लोग कृष्ण की मूर्ति को अपने सीने से लगाकर रात को सोते हैं, कृष्ण के लिए ही अपना पूरा सिंगार करते हैं, पूरी जीवन शैली कृष्ण की याद में व्यतीत कर देते हैं। ऐसे ही सूफी परंपरा में परमात्मा को प्रेमिका मानते हैं लेकिन इन सबसे ऊपर एक नाता है वह नाता है दास भाव का। साहिब मैं गुलाम हूं तेरा। परमात्मा सम्राट है, परमात्मा मालिक है और हम उसके गुलाम हैं। और यह भाव निर्अहंकारिता में ले जाता है। जब तक हम अहंकार में हैं तब तक हम परमात्मा से कोसों–कोसों दूर हैं, परमात्मा से विमुख हैं। और जैसे ही हम निर्अहंकार में आ जाते हैं तब परमात्मा के सम्मुख हो जाते हैं। और ये जो दासभाव है, यह गुलामभाव ही परमात्मा के चरणों में मिटने का एक बहाना बन जाता है।

दरिया साहब कहते हैं–
साहब मैं गुलाम हौं तेरा।
लिखि लीजै एह कागज कोरे

जनम जनम का चेरा।
जैसे पूत कपूत जो होवै पिता करे प्रतिपाला।
बहुत प्रेम मोद मन भरि के
नजरन्हि कीन्ह निहाला।
जीव के गुन ऐगुन जनि खोजियै
ऐसी रहनि न आई।
उठत बैठत नाम तुम्हारा
सरन सरन गोहराई।
एहीं अरज सुनो सरवन में हंस बिगोई न जाई।
कहें दरिया ले नाम तुम्हारा मुक्ति सदा पफल पाई।

परमात्मा हम तुम्हारे गुलाम हैं और नाम जन्मों–जन्मों के लिए लिख लो। हालांकि हमारी कोई योग्यता नहीं है फिर भी चाहते हैं कि प्रभु तुम जन्मों–जन्मों के लिए मुझे अपना चेला बना लो, अपना गुलाम बना लो। जैसे पुत्र सपूत हो या कपूत हो, पिता उसका पालन तो करता ही है ऐसे ही हममें कोई गुण तो नहीं है प्रभु लेकिन हमारी ओर नजर करके तुमने हमें मालामाल कर दिया, हमारा जीवन खुशहाल कर दिया। जैसे ही हम तुम्हारे गुलाम बने, जीवन में माल्कियत की कला आ गई। गुरु प्रशिक्षण है दास भाव का। ये दासभाव कैसे विकसित हो? ये दासभाव गुरु की पाठशाला में विकसित होता है, भक्ति के पाठ गुरु के पास ही सीखे जाते हैं। पश्चिम में दास का कोई पर्यायवाची शब्द नहीं है, स्लेव एक शब्द है लेकिन यह शब्द तो धिक्कार के योग्य है, दास के समानार्थी तो कोई शब्द ही नहीं है। दास भाव में मिटना है, पिघलना है और एक होना है। दास में समर्पण भाव है और स्लेव तो इसके नजदीक आता ही नहीं है।

पश्चिम में ईसाई परमात्मा को पिता कहते हैं, पिता–पुत्र का नाता है लेकिन इसमें अहंकार फिर भी बना रहेगा। एक पुत्र को अपने पिता के होने का अहंकार हो सकता है, वह मिट नहीं सकता। अगर अहंकार को मिटाना है तो सर्वाधिक और सुगम उपाय है दास भाव का।

एक बहुत प्यारी कहानी परमगुरु ओशो ने सुनाई है। खैर नस्साज नाम का एक फकीर हुआ है। एक बार एक धनिक रास्ते से गुजरता है। उसने देखा कि एक पेड़ के नीचे एक फकीर बैठा हुआ है। कपड़े फटे हैं, आंखें बंद हैं, लेकिन बहुत चुस्त और दुरुस्त शरीर है। इस धनिक ने सोचा कि लगता है कि यह किसी का गुलाम है, फटे हुए कपड़े पहने हुए है और गुलाम जैसे ही दिख रहा है। मुझे भी एक आदमी की जरूरत है, क्यों न इसे हम अपने घर ले चलें। धनिक ने उस सूफी को झगझोरा और जब फकीर ने आंख खोली तो धनिक ने कहा कि लगता है तुम अपने घर से भागे हुए हो और किसी के गुलाम हो? सूफी ने कहा कि

निश्चितरूप से आप सही कह रहे हैं, मैं भागा हुआ ही हूं, परमात्मा से भागा हुआ हूं और जबसे परमात्मा से भाग गया तो गुलाम हो गया हूं। फकीर की भाषा और संसार की भाषा एक सी नहीं हो सकती। धनिक ने कहा कि मुझे एक गुलाम की जरूरत है और तुम्हें जरूरत है एक मालिक की, चलो मैं तुम्हें अपने घर ले चलता हूं। फकीर बहुत खुश हो गया कि अब तो मुझे एक ठिकाना मिल गया, मैं तलाश में था मालिक की तो मुझे मालिक मिल गया। धनिक जब उस फकीर को घर ले गया तो वहां बोला कि आज से मैं तुम्हारा मालिक हूं और तुम मेरे गुलाम हो, आज से जो भी मैं तुम्हें कहूंगा वह तुम्हें करना पड़ेगा, जैसा मैं कहूंगा वैसा ही तुम्हें करना है। सूफी तो बहुत खुश हुआ, बोला कि यही तो हम चाहते हैं। हमने अपने मन से जो–जो किया सब अनकिया हो गया, जब भी कुछ किए हम संसार में फंस गए, हम तो चाहते ही थे कि कोई हमें बताने वाले मिल जाएं।

खैर नस्साज सूफी ने अपने मालिक की खूब सेवा करता, खूब सम्मान देता, खूब प्रेम दिया। नस्साज इसका नाम इसलिए पड़ा क्योंकि जो धनिक था वह एक जुलाहा था। उस धनिक ने इस फकीर को कपड़ा बुनना सिखा दिया। अब जब फकीर ने कपड़ा बुनना सीख लिया तो यह भी जुलाहा हो गया। नस्साज का अर्थ होता है जुलाहा, कपड़े बुनने वाला। और खैर का मतलब होता है भला आदमी। सूफी इतना भला आदमी था, इतना सेवा भाव में जीता था, इतना ज्यादा सम्मान देता था कि इसलिए उस धनिक ने उसका नाम खैर नस्साज रख दिया। अब सूफी खूब मेहनत करता और कपड़े की बुनाई करता। उसके हाथ में इतनी सुंदर कपड़ा बुनने की कला थी कि धनिक उन कपड़ों को बेचकर और भी ज्यादा धनवान हो गया, बहुत पैसे उसके पास आए। कुछ समय बाद उस धनवान को मन में ग्लानि होने लगी, उसे लगा कि मैं इसका कितना शोषण करता हूं और इसे देता भी कुछ नहीं हूं।

एक दिन धनिक सूफी के पास जाता है और बोला कि मुझे लगता है कि मैंने तुम्हारा बहुत शोषण किया है, तुमको मैंने कुछ भी नहीं दिया आज तक, केवल मैंने तुमसे लिया है। अब मुझसे और शोषण बर्दाश्त नहीं होता, अब मैं तुम्हें मुक्त करना चाहता हूं। खैर नस्साज हंसने लगा, बोला कि तुम मुझे मुक्त करना चाहते हो लेकिन धन्यवाद तुम्हारा कि तुमने मुझे दासभाव की कला सिखा दी, तुमने मुझे गुलाम होने की कला सिखा दी और जबसे मैंने गुलामी की कला सीखी है, गुलाम होने का पाठ सीखा है, मैं तो अपना मालिक बन बैठा। मैंने अपने भीतर की मालकियत पा ली, अब तुम अपने बारे में सोचो, तुम कब तक संसार के गुलाम बने रहोगे।

जिस दिन हम अहंकार की गुलामी से मुक्त होते हैं, हम अपने मालिक हो जाते हैं इसीलिए तो सन्यासियों को स्वामी कहा जाता है। हम अपने स्वामी हैं, हम अपने अहंकार के गुलाम नहीं हैं। अहंकार के हाथ में हमारी चाबी नहीं है। इसलिए एक शब्द है डिसायपल, डिसायपल का अर्थ होता है आदेश का पालन करने के लिए हम तत्पर हैं, आदेश पालन के लिए संकल्पित हैं। और जब तक हम डिसायपल नहीं हो जाते तब तक हम डिवोटी नहीं हो

सकते। पहले डिसायपल होना होगा उसके बाद ही हम भक्त बन सकते हैं। प्रथम सीढ़ी है डिसायपल होना।

सिक्ख गुरु साहिब ने गाया है–
हम चाकर गोविंद के ठाकुर मेरा भारा
करन करावन सगल विधि सो सद्गुरु हमारा।
गुरु सेवा महल पाइए जग्य तर तरिए।
हम चाकर गोविंद के।

मीरागाई गाती हैं–
श्याम मोही चाकर राखो जी।

जिस दिन हम इस चाकर भाव में चले जाते हैं उस दिन हम भीतर की मालकियत पा लेते हैं। सबसे पहले जब बच्चा जगत में आता है तो वह स्वयं को दूसरे के रूप में ही देखता है। जब उसे भूख लगती है तो वह कहता है पप्पू को भूख लगी हैं, जब उसे बाहर जाना होता है तो कहता है पप्पू को बाहर जाना है। वह स्वयं को दूसरे के रूप में देखता है, धीरे–धीरे दूसरों की मौजूदगी में स्वयं के होने का एहसास करता है और यहीं से अहंकार की शुरूआत होती है। और यहां से हम गुलाम होना शुरू हो जाते हैं, जगत के गुलाम हो गए। अब हम जब गुरु के चरणों में जाते हैं तो पता चलता है कि मैं कुछ नहीं हूं। आई एम नो बडी, पहले था आई एम समबडी, अब जब गुरु के चरणों में गए तो पता चला कि आई एम नो बडी। अब अहंकार मिटना शुरू हो गया, अब ऊंट पहाड़ के नीचे आ जाता है।

इसके बाद जब गुरु परमात्मा का परिचय कराता है और जब परमात्मा में हमारा डूबना होता है तब पता चलता है आई एम नथिंग, मैं तो हूं ही नहीं, परमात्मा ही है। ऐसे ही गुलाम से हम मालिक बन बैठते हैं। क्योंकि सबकुछ गुरु ही है, केवल एक मालिक ही तो है, उस एक के सिवाय दूसरा कोई नहीं है।

मैं ही मैं हूं इस जहां में दूसरा कोई नहीं है,

लेकिन यह भाव तब आता है जिस दिन भीतर एक घटना घटती है, अनुभूति होती है, अहं ब्रम्हास्मि। और याद रखना, यह कोई अहंकारी व्यक्ति नहीं कह सकता। सर्वाधिक निर्अहंकारिता की दशा में यह अनुभव होता है।

जौठोर जौंत्रोणा पेये।
एलाम जे कौड़ार दिये रोईलाम ता।
शौकोल भूलिये एई भौबे आशी।।

गुरु बोस्तु चिनले ना मोन
औशोमौय की कोरबी तौखोन घूरते बूझीं।
होलोरे मोन चौउराशी

बड़े वादे करके इस संसार में हम आए थे और यहां आकर सबकुछ भूल बैठे। जब हम उस जगत से इस संसार में आते हैं तो हर एक व्यक्ति वादा करके आता है कि हे परमात्मा मैं तुम्हारी याद में जिऊंगा, मैं स्वयं की खोज करूंगा, मैं करुणा का पाठ सीखकर आऊंगा, मैं प्रेम का पाठ सीखकर आऊंगा, मैं अहिंसा का पाठ सीखकर आऊंगा, भक्ति में डुबूंगा, ध्यान की कला सीखूंगा लेकिन इस जगत में आकर वह सबकुछ भूल जाता है।

भूलना था तो इकरार हीं क्यों किया था,
बेवफा तूने मुझे प्यार हीं क्यों किया था।
सिर्फ दो–चार सवालात का मौका दे दे,
हम तेरे शहर में आए हैं अजनबी की तरह।
सिर्फ एक बार मुलाकात का मौका दे दे।

जब हम इस जगत में आते हैं और गुरु को मुलाकात का मौका देते हैं, मुलाकात यानि अपने गुरु के साथ एक गहरी समझ। जैसे गुरु की अंगुलियां हमारे हृदय की वीणा पर पड़ जाएं और इस हृदय के तार झंकृत हो जाएं, कुछ ऐसी मुलाकात का जब हम गुरु को मौका दे देते हैं तब गुरु हमें निर्अहंकारिता का पाठ सिखाता है और हमारे जीवन की दिशा को मोड़ देता है और इस जगत के चौरासी लाख योनियों से मुक्त कर देता है। वह गुलामी की कला सिखाकर हमें मुक्त कर देता है। हम गुलाम होकर मुक्त हो जाते हैं, गुलाम होकर हम स्वामी हो जाते हैं– स्वयं के स्वामी।

धन्यवाद। हरिं ओम तत्सत्।

आठवां प्रवचन

जीवन का अज्ञेय रहस्य

के खेया दैय रे चिरोकाल।
जूग–जूगान्तो शौकाल बिकाल।।
तारे आमि चिन्ते नारि,
बूझते तारे कोई बा पारी,
कारे पाई कारे धोरीं,
छिंड़े मायाजाल।।
चार जुग धोरे दिलो खेया,
कोरलाम खेयाय आशा जावा,
आपोन धौन पौर के दिया,
होलाम पौयमाल।।
के ताहार जाने ठिकाना,
कार जौगोते आछे जाना,
लालोन साँई बौले, दृद्दू काना,
पोड़िया बेहाल।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

इस प्यारे बाउल गीत का भावार्थ इस प्रकार है– कौन है जो अनंतकाल से युग–युगांतर, साँझ– सकारे नैया खे रहा है।

मैं उसे अब तक पहचान न सका, उसे समझ न सका। ऐसा कौन है जिसे पाऊँ, जिसे धरूँ, जो उस परम् सत्य से मेरी पहचान करवा सके, समस्त मायाजाल तोड़कर उस परम् सत्य को जान सकूँ।

कई युगों से जो नैया खे रहा है, उसकी नैया में ही भव में आना–जाना किया, लेकिन अपना अमूल्य धन दूसरे को सौंपकर अपराधी हो गया।

कौन है जो उसका ठिकाना जानता है? लालन साँई अपने शिष्य दूद्दू शाह को समझा रहे हैं और दूद्दू शाह स्वयं को काना कहते हुए कह रहे हैं कि हे मेरे गुरु लालन साँई मैं तो काना हूँ, बेहाल हो गया हूँ, इसलिए आपकी शरण में आया हूँ।

के खेया दैय रे चिरोकाल।

जूग–जूगान्तो शौकाल बिकाल।।

'शिव सूत्र' में 'विस्मयः योग की भूमिका' बताई गई है। जब हम इस जगत को देखते हैं जैसे आकाश को देखते हैं तो तारों से भरा आकाश, चांद को देखते हैं, ये सुबह, ये शाम और अचानक हम ठिठक जाते हैं, अवाक् रह जाते हैं इस जगत के सौंदर्य को देखकर और फिर विस्मय विमुग्ध होकर हम उसकी खोज में निकल जाएं कि किसने इसे बनाया है, इसको बनाने वाला कौन है।

जमीं चल रहीं आसमां चल रहा,

ये किसके सहारे जहां चल रहा है।

कैसे ये जहां चल रहा है, कैसे ये ऋतुएं बदल जातीं हैं, कैसे सुबह हो जाती है, कैसे रात हो जाती है। सबकुछ नियमानुसार चलता रहता है और कभी कुछ बदलता नहीं। कौन है वह जिसने इस जगत को बनाया है। जब हम इस विस्मय से भरकर बाहर की ओर निकलते हैं तो विज्ञान का जन्म होता है और जब हम इस विस्मय से भरकर अपने भीतर जाते हैं तब धर्म का जन्म होता है, योग का जन्म होता है। विस्मय योग की भूमिका है। विस्मय परमात्मा से जोड़ता है।

लोग दो प्रकार के हैं, एक बहिर्मुखी और एक अंतर्मुखी। बहिर्मुखी लोग जब विस्मय से भरते हैं तो बाहर की ओर निकलते हैं परमात्मा को खोजने और अंतर्मुखी जब विस्मय से भरते हैं तो वे स्वयं के भीतर जाते हैं, ये ध्यानी स्वभाव के लोग होते हैं और पाते हैं कि परमात्मा से हमारा संबंध तो युग–युगान्तर से है, सदा–सदा से है, एक पल के लिए भी हम उससे अलग हुए ही नहीं, अलग होकर हमारा होना संभव ही नहीं है। बस, हम भूल गए हैं इस संबंध को लेकिन याद रखना, परमात्मा नहीं भूला है। एक पिता अपने बच्चे को कभी नहीं भूलता, एक मां अपने बच्चे को कभी नहीं भूलती लेकिन बच्चा भूल जाता है। तो उद्गम कभी नहीं भूलता। यही तो

सहारा है, यही तो आशा है कि हम फिर से परमात्मा को खोज सकते हैं। और याद रखना, परमात्मा को खोजना नहीं है, केवल याद आ जाए और बात बन जाती है। वह तो हमारे होने में ही मौजूद है।

दयारे सुबहो शाम जिसके इशारों से है
मेरी गफलत तो देखो उसे गाफिल समझता हूं

जिसके इशारों से यह जीवन चल रहा है वह हमारे प्रति कैसे बेरुख हो सकता है, उसकी नजर हम पर प्रतिपल है, उसका साया हम पर प्रतिपल है।

जो मुझमें बोलता है वो मैं नहीं,
ये जलवा यार का है, ये मैं नहीं हूं।
अंधेरी रात में साया तो हो नहीं सकता,
ये कौन है जो साथ–साथ चलता है।

जब हम अपने भीतर जाते हैं तो इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है, शून्यता में उतरते हैं, भीतर के निराकार में उतरकर इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है।

स्वामी राम एक बार अमेरिका गए, उस संस्मरण में उन्होंने लिखा है तो वो तो पहले गुफाओं में रहते थे, जंगलों में रहते थे। तो जब अमेरिका गए तो किसी आफिस का दरवाजा उन्हें खोलना था, उन्होंने दरवाजे को धक्का दिया, दरवाजा तो दीवाल जैसे हो गया, खुले ही न, फिर उनकी नजर पड़ी की दरवाजे पर लखा है पुल, अपनी ओर खींचो। जब उन्होंने खींचा तो दरवाजा खुल गया। स्वामी राम ने कहा कि ऐसे ही परमात्मा है, परमात्मा को हमें अपनी ओर खींचना होता है। हम धक्का देना तो जानते हैं, हम संघर्ष करना जानते हैं, तपस्या करने के लिए हम तैयार हैं, तप करने के लिए हम तैयार हैं, योग करने के लिए हम तैयार हैं, तरह–तरह की कवायद करने के लिए हम तैयार हैं लेकिन कुछ न करने के लिए हम तैयार नहीं हैं। अपनी ओर खींचने का मतलब है समर्पण भाव, ये समर्पण का प्रेम भाव ही परमात्मा को अपनी ओर खींचता है।

जैसे जब बारिश होती है तो पहाड़ों पर पानी ठहरता नहीं है, वह तो बह जाता है अपने आप लेकिन हर खाई–खड्ड पानी से लबालब भर जाते हैं। क्यों? क्योंकि उन्होंने अपने भीतर जगह बना रखी है, वो जो गर्त है वह पानी को अपनी ओर खींच लेता है। ऐसे ही परमात्मा को हमें अपनी ओर खींचना है, यही खींचने की कला है समर्पण भाव, मिटना। यह मिटना कैसे हो? यह मिटना तब होता है जब हम शांत बैठते हैं और अपने भीतर जाते हैं उस शून्य में, उस निराकार में जहां पाते हैं कि वहां कोई क्रिया नहीं है, कोई विचार नहीं है, न कोई भाव है, इन सबके पार जाना होता है। और हम जब ऐसे ठहर जाते हैं, उस समर्पण की भावदशा में परमात्मा हम पर उतर आता है।

शून्य होना सीख जाएं, समर्पण सीख जाएं, रुकना सीख जाएं तो परमात्मा अपने आप हमारी ओर खिंचता चला आता है और हमारे प्रश्न का उत्तर मिल जाता है कि चिरकाल से कौन इस नाव को खे रहा है।

तारे आमि चिन्ते नारि,
बूझते तारे कोई बा पारी,
कारे पाई कारे धोरी,
छिंड़े मायाजाल।।

मैं उसे पहचान नहीं सकता, किसे पकडूं, किसके पैर पकडूं जो मेरे मायाजाल से मुझको छुड़ा दे, मुक्त करा दे और प्रभु से मिला दे।

सिक्ख गुरु साहिब कहते हैं–
प्रभ मिलबे कउ प्रीति मन लागी।
पाइ लगउ मोहि करउ बेनती कोऊ संतु मिलै बडभागी।।
मनु अपरउ धनु राखउ आगै मन की मति मोहि सगल तिआगी।
जो प्रभ की हरि कथा सुनावै अनदिनु फिरउ तिसु पिछै विरागी।।

कोई तो मिल जाए मुझे प्रभु से मिलाने वाला, प्रभु से मिलने की प्यास पैदा हो गई, प्रभु से प्रीति लग गई। अगर कोई ऐसा संत मिल जाए तो मैं बड़भागी हो जाऊं, मैं बड़ा भाग्य वाला हो जाऊं। उसके पैर पकड़ लूं, उससे विनती करूं, अपना मन अर्पित कर दूं। तन और मन तो दे दिया लेकिन अपनी ये जो तथाकथित बुद्धि है इसको भी त्याग दूं। यह चतुराई भी चरणों में रख दूं तब जाकर प्रभु से मिलन होता है।

जो प्रभु की कथा सुनावे हर पल फिरूं मैं उसके पीछे।
जो प्रभु की कथा सुनावे उसके साथ रात–दिन मैं फिरता रहूं।
पूरब करम अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी।
मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक जनम जनम की सोई जागी।।

जो रसिक भी है और वैरागी भी है वही मेरी मदद कर सकता है, मायाजाल से छुड़ाने में और परमात्मा से मिलाने में। रसिक कैसे हैं सदगुरु? वे रसिक है परमात्मा के प्रति। एक दफा कबीर साहब से किसी ने कहा कि आप तो महान त्यागी हैं। कबीर ने कहा कि हम त्यागी नहीं हैं भाई, तुम असली त्यागी हो। तुम परमात्मा के परमभोग को छोड़कर संसार में कितने कष्ट में उलझे हो, त्यागी तो तुम हो। हम कहां त्यागी? हम तो परमानंद में जी रहे हैं।

गुरु परमात्मा का रसिक है, इसलिए जगत के प्रति वैरागी है। जब इस संसार में गुरु संसारियों को देखता है तो वैरागी हो जाता है और जब इस विराट में परमात्मा को देखता है तो रसिक हो जाता है। तो गुरु ही हमारी मदद कर सकता है वैरागी होने में। ओशो एक बहुत अच्छी कहानी सुनाते हैं–

एक राजा है और उसका एक मात्र बेटा है। वह बेटा राजा का कहना नहीं मानता है और धीरे–धीरे उसकी आदतें बिगड़ती जाती हैं, अब बेटा बहुत बिगड़ गया है। राजा ने सोचा कि इसे नसीहत देने के लिए कुछ किया जाए। राजा ने गुस्सा होकर कहा कि अब तू घर से निकल जा। अब लड़का भी बहुत जिद्दी था क्योंकि राजा का ही बेटा था, घर से निकल गया और राज्य की सीमा छोड़कर पता नहीं कितनी दूर निकल गया। सालों–साल बीत गए और राजा बूढ़ा होने

लगा। अब राजा को अपने राजकुमार की याद आई कि चाहे जैसा भी है लेकिन बेटा तो मेरा ही है और अब उसकी जरूरत भी है, ये राज्य उसका ही तो है। राजा ने मंत्रियों की बैठक बुलाई और सबसे बताया कि मेरे बेटे को ढूंढ़ना है।

एक वजीर ने कहा कि मैं लेकर आऊंगा आपके बेटे को, मुझे जाने की आज्ञा दीजिए। वह स्वर्ण रथ लेकर गया और ढूंढ़ते–ढूंढ़ते उसे राजकुमार मिल गया। जुआड़ियों के बीच बैठकर जुआ खेल रहा था, सारे अवगुणों से भरा हुआ था। वजीर ने राजकुमार को आवाज दी तो वह तो पीछे तक नहीं मुड़ा, उसने रथ की ओर देखा भी नहीं। बेटा तो समझ गया कि पिताजी ने बुलावा भेजा है। अब बिल्कुल वह जिद में आ गया, वजीर को वहां से वापिस आना पड़ा खाली हाथ और बोला कि राजन्, मैं आपकी बात को पूरा नहीं कर पाया, आपकी इच्छा पूरी नहीं कर पाया।

दूसरे वजीर ने कहा कि तुमने जो दूरी रखी थी इतनी, थोड़ा उसके जैसे होना था। उसके करीब जाने के लिए उसके जैसा तो होना ही पड़ेगा, अब मैं लेकर आऊंगा। दूसरा वजीर बोला कि राजन एक मौका मुझे दीजिए। अब दूसरा वजीर जाता है और राजकुमार के पास पहुंचता है, गंदे कपड़े पहनकर जाता है और जाकर जुआड़ियों के साथ बैठता है और खेलता है, शराब पीता है और राजकुमार के जैसे ही हो जाता है। धीरे–धीरे उसकी राजकुमार से बहुत गहरी दोस्ती हो जाती है। तो दोस्ती तो हो गई लेकिन वह वजीर भी जुआड़ी हो गया, शराबी हो गया और लौटना तो भूल ही गया। बेटा क्या लाएगा खुद भी लौटना भूल गया।

अब एक और वजीर ने बोला कि मुझे मौका दीजिए। राजा तो बिल्कुल निराश हो गया और बोला अब कोई संभावना ही नहीं है, वह तो नाटक करने गया था शराबी होने का और खुद भी उसी के जैसा हो गया और वापस आना भूल गया, अब तुम्हें मैं नहीं जाने दूंगा। उस वजीर ने कहा कि अंतिम मौका एक बार मुझे दे दीजिए। अब यह तीसरा वजीर भी ऐसे ही फटे–पुराने कपड़े पहनकर गया, इसने भी साथ में बैठकर जुआ खेला, इसने भी शराब पी लेकिन भीतर पूरा होश साधे हुए था, मात्र लीला करता रहा। लीला बहुत कुशलता से की, खेला बहुत कुशलता से लेकिन हमेशा साक्षीभाव में रहा और धीरे–धीरे राजकुमार से दोस्ती हो गई। और जब राजकुमार घुलमिल गया वजीर के साथ तब वजीर ने कहा कि राजकुमार अब वापस चलिए राजा जी ने आपको बुलाया है, तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं और तीसरा वजीर राजकुमार को वापिस लाने में सफल हो गया। गुरु भी ऐसा ही है। गुरु भी शिष्य के तल पर उतरता है, गुरु भी शिष्य की भाषा में बात करता है लेकिन ठीक ऐसे ही जैसे रसिक, वैरागी लीला करता है और लीला करते हुए धीरे–धीरे शिष्य को इस मायाजाल से बाहर निकाल लेता है।

चार जुग धोरे दिलो खेया,
कोरलाम खेयाय आशा जावा,
आपोन धौन पौर के दिया,
होलाम पौयमाल।।

कई युगों से जो नैया खे रहा है उसकी नैया से ही भव में आना–जाना क्या, वह तो

अपना अमूल्य धन दूसरों को सौंप दिया। ये अमूल्य धन क्या है? यह अमूल्य धन हमारी आत्मा है, यह अमूल्य धन हमारा होश है, यह अमूल्य धन हमारा चैतन्य है। शिव सूत्र में एक वचन है– चैतन्यात्मा! चैतन्य ही आत्मा है। यानि जो अपने से भी अपना है, जो सदा हमारे साथ है, मृत्यु पर्यंत भी हमारे साथ है वह है हमारी आत्मा। चैतन्य ही हमारा सबसे अपना है। यह होश अगर हमने खो दिया, सदा दूसरों को देखने में लगा दिया, यह प्रेम सदा दूसरों की ओर बह रहा है और स्वयं को भूल ही गए, जिस समय यह होश स्वयं पर लौट आता है हम चैतन्यपूर्ण हो जाते हैं, जागरूक हो जाते हैं। यही हमारा अमूल्य धन है और यही हमारे साथ जाता है।

आइए, सुनते हैं कि परमगुरु ओशो क्या कहते हैं–

'इस जगत में, सिर्फ चैतन्य ही तुम्हारा अपना है। आत्मा का अर्थ होता है, अपना; शेष सब पराया है। शेष कितना ही अपना लगे, पराया है। मित्र हों, प्रियजन हों, परिवार के लोग हों, धन हो, यश, पद–प्रतिष्ठा हो, बड़ा साम्राज्य हो––वह सब जिसे तुम कहते हो मेरा––वहां धोखा है। क्योंकि वह सभी मृत्यु तुमसे छीन लेगी। मृत्यु कसौटी है––कौन अपना है, कौन पराया है। मृत्यु जिससे तुम्हें अलग कर दे, वह पराया था। और मृत्यु तुम्हें जिससे अलग न कर पाए, वह अपना था।

आत्मा का अर्थ है, जो अपना है। लेकिन जैसे ही हम सोचते हैं अपना, वैसे ही दूसरा प्रवेश कर जाता है। अपने का मतलब ही होता हैः कोई दूसरा, जो अपना है। तुम्हें यह ख्याल ही नहीं आता कि तुम्हारे अतिरिक्त, तुम्हारा अपना कोई भी नहीं है; हो भी नहीं सकता। और जितनी देर तुम भटके रहोगे इस धारा में कि कोई दूसरा अपना है, उतने दिन व्यर्थ गए, उतना जीवन अकारण बीता, उतना समय तुमने सपने देखे। उतने समय में तुम जाग सकते थे, मोक्ष तुम्हारा होता; तुमने कचरा इकट्ठा किया।

सिर्फ तुम ही तुम्हारे हो। यह पहला सूत्र, मेरे अतिरिक्त मेरा कोई भी नहीं है।

यह बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है, बड़ा समाज–विरोधी। क्योंकि समाज जीता इसी आधार पर है कि दूसरे अपने हैं; जाति के लोग अपने हैं; देश के लोग अपने हैं; मेरा देश, मेरी जाति, मेरा धर्म, मेरा परिवार; मेरे का सारा खेल है। समाज जीता है 'मेरे' की धारणा पर। इसलिए धर्म समाज–विरोधी तत्त्व है। धर्म समाज से छुटकारा है, दूसरे से छुटकारा है। और धर्म कहता है कि तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारा और कोई भी नहीं।

ऊपर से देखने पर बड़ा स्वार्थी वचन मालूम पड़ेगा। क्योंकि यह तो यह बात हुई कि बस हम ही अपने हैं, तो तत्क्षण हमें लगता है यह तो स्वार्थ की बात है! यह स्वार्थ की बात नहीं है। अगर यह तुम्हें ख्याल में आ जाए, तो ही तुम्हारे जीवन में परार्थ और परमार्थ पैदा होगा। क्योंकि जो अभी आत्मा के भाव से ही नहीं भरा है, उसके जीवन में कोई परार्थ और कोई परमार्थ नहीं हो सकता।'

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

नौवां प्रवचन

समय रहते खुद को जान लो

की होबे शोमौय गैले।
औशौमौय काँदअबे शेषे।
भौबोनोदीर कूले।।
रौंगोरौशे काटाली जौनोम
होलो ना मोनूष्येर कौरोन
ताइ तो तोमार। दौशा ऐमोन
पोड़े रोइले।।
जा कौरो तौंराय कौरो
मनुष चिनिया धौरो
तौबे तो पाइते पारो।
जा हाराइले।।
शोमौयेर मूल्यो जेने नाओ
तौबे तो औमूल्यो निधि पाओ
औधींन दृद्दू बौले। आमाय तौराओ
रेखे चौरोन तौले।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

बाउल फकीर दद्दू शाह कहते हैं– समय बीतता जा रहा है अब क्या होगा? संसार नदी के किनारे अंतिम समय में बैठ कर अब रोना ही क्या? रासरंग में ही पूरा जन्म बीत गया। किस कारण से मनुष्य जन्म हुआ, वह भी न जान पाया इसीलिए तो तेरी ऐसी दशा है, व्यर्थ ही पड़ा–पड़ा समय बीता जा रहा है। जो भी करना है जल्दी कर ले। मनुष्य में ही वो परम धन है उसे तू पा सकता है, इसलिए समय रहते पहचान ले। समय को जानकर ही उस अमूल्य निधि को पा सकता है। दद्दू कहते हैं, गुरू मोहे तारो और अपने चरणों में स्थान दो। गुरू ही मुझे तार सकते हैं।

की हौबे शोमौय गैले

औशौमौय काँदअबे शेषे। भौबोनोदीर कूले।।

समय बीतता जा रहा है। यह जो जीवन है हमारा, यह समय की नदी है। हैराक्लाइटस का एक वचन है कि इस समय की नदी में हम दोबारा पैर नहीं रख सकते। यह जीवन नदी की तरह भागता जा रहा है और हम इसे पकड़ने की कोशिश में अपने जीवन को गंवा देते हैं।

'उम्रे दराज मांग कर लाए थे चार दिन

दो आरजू में कट गए, दो इंतजार में।'

पहले हम कामनाओं के वशीभूत होकर कर्म करते हैं। चीजों को पाने की आकांक्षा करते हैं, दौड़ते हैं और कर्म के बाद उसका फल का इंतजार करते हैं कि अब फल आएगा, अब तृप्ति मिलेगी, अब मजा आयेगा, अब आनंद आयेगा। चीजें भी आती हैं, फल भी मिलता है, साधन भी आते हैं जीवन में लेकिन ये साधन आनंद नहीं लाते। ये साधन तृप्ति नहीं लाते और फिर हम दूसरे साधनों की ओर निकल जाते हैं। हम और कामनाओं को पालते हैं। और दौड़ते हैं, और दौड़ते हैं और ऐसे दौड़ते–दौड़ते जीवन का अंतिम समय आ जाता है। हम वर्तमान में नहीं जीते। हम पहले भविष्य में जीते हैं और जब उम्र निकल जाती है तो अतीत में जीते हैं। जैसे–जैसे वृद्धावस्था आती है, हम भूतकाल की ओर जीना शुरू कर देते हैं। जब बचपन में थे, तब हम भविष्य की ओर जी रहे थे। लेकिन वर्तमान में जीना कोई नहीं जानता। वर्तमान में जीना ही असली धर्म है।

रौंगोरौशे काटाली जौनोम

होलो ना मोनूष्येर कौरोन

ताइ तो तोमार। दौशा ऐमोन

पोड़े रोइले।।

रास रंग में पूरा समय बीत गया। शंकराचार्य कहते हैं–

बालस्तावत् क्रीडासक्तः तरुणस्तावत् तरुणीसक्तः।

वृद्धस्तावत् चिन्तासक्तः परे ब्रह्मणि कोऽपि न सक्तः।।

बालक खेलकूद में अपना समय गंवा रहा है। युवक तरूणी में, अपने प्रेम में, और वृद्ध चिंताओं में। मनुष्य परमात्मा में कभी भी संलग्न नहीं होता है। शंकराचार्य जी कहते हैं– हे मूढ़! गोविंद को भजो। भज गोविंदम्, भज गोविंदम्, भज गोविंदम् मूढ़मते।

कबीर दास जी कहते हैं– 'बाल अवस्था खेल गंवायो, जब जवानी तब मान घना रे' युवावस्था में हम धन की ओर दौड़ रहें हैं, पद की ओर दौड़ रहें हैं; प्रेम की ओर दौड़ रहे हैं। लेकिन जो पाना है, जो हमारे जीवन का असली साथ है– असली साथ क्या है? असली साथ वह है जो शाश्वत है, असली साथ वह है जो मौत के समय हमारे साथ जायेगा। मौत के समय हमारा साथ देगा, उसके लिए हम नहीं दौड़ रहे हैं। और व्यर्थ दौड़ते–दौड़ते यह जीवन ऐसे ही खत्म करते जा रहे हैं।

एक बड़ी प्यारी कहानी याद आती है– एक बहुत बड़ा हीरे का जानकार था, पारखी था। उसके पास बहुत सारे हीरे थे। उसकी बहुत बड़ी दुकान थी हीरे की। लेकिन बीमार हो गया और उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी पत्नी थी और एक उसका पुत्र था। किसी समय उसने अपनी पत्नी को एक बहुत ही अमूल्य हीरा दिया था और वह पत्नी ने संभालकर रखा था। उसकी मृत्यु के बाद उसका सारा व्यापार ठप्प हो गया। बच्चा क्रमशः बढ़ने लगा और ये लोग गरीबी में जीवन काटने लगे। जैसे ही यह बच्चा चौदह साल का हुआ, उसकी मां ने उसे एक हीरा दिया। मां ने कहा कि बेटा अब हम बहुत ही गरीबी में जी लिए, अब इस हीरे को ले जाओ और जो इसका सही पारखी होगा वह तुम्हें इसका दाम बताएगा। इसके दाम तुम्हारे पिताजी ने बताया हीं नहीं कि कितने हैं।

हीरे को लेकर बच्चा गया। चौदह साल का बच्चा है। सबसे पहले वह सब्जी वाले के पास गया और बोला कि इसका क्या दाम दोगे? सब्जी वाले ने कहा कि क्या दाम लोगे? एक टोकरी सब्जी ले जाओ, यही दाम है इसका। वह आगे कपड़ों की दुकान पर गया। कपड़े वाले ने कहा कि एक दर्जन कपड़े दे देता हूं, ये पत्थर रख जाओ, इतनी ही कीमत है इसकी। वह फिर आगे गया। आगे सोने की दुकान थी। सुनार ने कहा– तुम्हें पचास हजार रूपये दे देंगे। रख जाओ ये पत्थर। मन नहीं माना बालक का। और आगे गया हीरे की दुकान पर। बहुत बड़ी दुकान थी हीरे की। बहुत बड़ा व्यापारी था हीरे का। बालक उसे बोला कि मेरे पास पत्थर है, आप इसका क्या दाम देंगे? उसने बोला ठीक है, ज्यादा से ज्यादा एक लाख रुपये। फिर भी उसका मन नहीं माना। और आगे जो सबसे बड़ा जो हीरे का व्यापारी था उस शहर में वहां गया।

उसको उसने यह पत्थर दिखाया, देखते ही व्यापारी की आंखों में चमक आ गयी। उसने का कहा यह हीरा तुम्हारे पास कैसे आया? बच्चे ने कहा यह मेरे पिताजी ने मेरी मां को उपहार में दिया था और कहा था कि यह अमूल्य है। आप बताइये कि इसका मूल्य क्या है? उतना ही मैं लेना चाहूंगा आपसे। हीरे के व्यापारी ने कहा कि इसका मूल्य मैं नहीं आंक सकता। तुम मेरी सारी दुकान ले लो तब भी मैं इसका मूल्य नहीं आंक पाउंगा। यह हीरा अमूल्य हीरा है। बहुत इसकी कीमत है। मूल्य आंकना इसका मुश्किल है। हां, एक काम करता हूं, तुम इसे मुझे देना ही चाहते हो तो ऐसा करते हैं कि मेरे पास तीन दुकाने हैं उन तीन दुकानों में मैं तुम्हें एक दुकान पर पंद्रह मिनट का समय दूंगा, दूसरी दुकान पर मैं तुम्हें पच्चीस मिनट का समय दूंगा। तीसरी दुकान पर मैं तुम्हें एक घंटे का समय दूंगा। इन तीनों दुकानों में से तुम जितना सामान बाहर निकालो, वह सारा सामान तुम्हारा हो जायेगा। वह सारी संपदा तुम्हारी हो जाएगी।

बच्चा बहुत खुश हुआ। बच्चे के साथ उसने अपने दो गार्ड भेज दिये। बच्चा पहली दुकान पर पहुंचा, जाकर देखता है इतने सुंदर-सुंदर डिब्बे हैं। उसने तो ऐसे बॉक्स कभी देखे ही नहीं थे। उसके अंदर जो हीरे मौजूद थे, उसकी तो आंखे फटी की फटी रह गयी। इतने सुंदर हीरे। और आगे देखा, और आगे देखा और देखते-देखते पंद्रह मिनट बीत गये। गार्ड ने कहा, समय पूरा हो गया तुम्हारे हाथ कुछ नहीं आया। उसने सोचा ठीक है दूसरी दुकान पर जाता हूं।

दूसरी दुकान पर पच्चीस मिनट मिले थे उसे। वहां पर भी उसने देखा कि बहुत लंबी दुकान है। और सुंदर सजावट है। दुकान चूंकि लंबी है तो उसने सोचा कि जरा देख तो लूं क्या-क्या है? किस तरह की सजावट है, भांति-भांति की सजावट है। बहुत ही विलक्षण सजावट है। देखते-देखते सोचा कि अब इकट्ठा कर लूंगा लेकिन उसको पता ही नहीं चला और पच्चीस मिनट निकल गये। यह बाजी भी हाथ से चली गयी। गार्ड ने बोला कि तुम्हारे हाथ कुछ नहीं आया। तुम हार गये।

अगली दुकान पर समय अब साठ मिनट का है, कम से कम उसमें तो जीत लेना, उसमें तो कुछ इकट्ठा कर लेना, उसने कहा ठीक है। वह वहां पर गया और देखा यह दुकान तो सजी हुई नहीं थी लेकिन यहां पर बड़ी सारी चीजें थीं। तरह-तरह के स्कूटर, तरह-तरह की गाड़ियां। रास रंग का सामान। रस, रूप, गंध, स्पर्श सब चीजें यहां पर थीं। वह तो कभी गाड़ियों का मजा ले, कभी नाच का मजा ले, कभी गीत का मजा ले; कभी खाने का मजा ले; उसने सोचा की अंतिम दस मिनट में सब उठा लूंगा। लेकिन जब उसने समय देखा तो समय निकलता जा रहा था। निकलते-निकलते उसने एक टाट की थैली उठा ली। उसने सोचा कि यह तो बड़ी भारी थैली है। इसमें तो कुछ पड़ा ही होगा पैसा। चलो उसे उठा लेते हैं। बाहर निकल कर उसने देखा कि उसमें तो लोहे के टुकड़े पड़े थ, लोहे के सिक्के थे, और कुछ था ही नहीं। कूड़े-कचरे से लदी हुई पोटली थी। फिर उसके हाथ में कुछ नहीं

आया और खाली का खाली उसे जाना पड़ा।

हमारा जीवन भी ऐसे ही दुकान की तरह है। पहला बचपन की दुकान है पंद्रह साल तक। इसमें खेलते हैं, कूदते हैं, खाते हैं, पीते हैं, ऐसे ही निकल जाता है। फिर 25 वर्ष आगे के हैं। ये वर्ष गधा–पच्चीसी में बीत जाते हैं। लड़कियां जो हैं युवकों के पीछे, युवक जो हैं युवतियों के पीछे। धन के पीछे, सभी आनंद के साधनों के पीछे दौड़ते हैं, ऐसा ही निकल जाता है समय। और अंतिम जो वृद्धावस्था है। अब जो बच्चे बड़े हो गये उनकी चिंता सताएगी। बच्चों के बच्चे हो गए उनकी चिंता सताएगी। जो साधन इकट्ठा किया, जो धन इकट्ठा किया उसे कैसे संभाल कर रखें, कैसे बांटे? इसकी चिंता सताएगी। लेकिन भजन के लिए समय ही नहीं बचा।

भजन कब किये जा सकते थे? जब हमारे पास अतिरिक्त ऊर्जा है। जब हम ऊर्जावान हैं। जब हम व्यर्थ समय गंवा रहे हैं, हम साधन इकट्ठा कर रहे हैं, कि इससे आनंद मिलेगा, इससे तृप्ति मिलेगी; इससे पूर्णता होगी जीवन की। लेकिन वे सब ठींकरे निकले हैं। उन साधनों से हमें जीवन का हल नहीं मिलता और धीरे–धीरे हम क्रमशः मौत की ओर खिसकते जाते हैं। जब परमात्मा याद आने लगता है उस समय ऊर्जा ही नहीं बची। इस निस्तेज अवस्था में, इस ऊर्जाविहीन अवस्था में हम सोचते हैं कि जहां हम संसार में नहीं दौड़ सकते और अंतर्यात्रा में तो जा सकते हैं। लेकिन उस यात्रा में और ऊर्जा चाहिए। ऊर्जा का अतिरेक चाहिए। जीवन को हम ऐसे ही गंवा देते हैं। जीवन की समय की नदी ऐसी ही हाथ से निकल जाती है और हम बैठकर रोते हैं अंतिम दिनों में। हर एक व्यक्ति, हर एक बच्चा, पूरे उमंग से, पूरे उत्साह से भरा हुआ आता है। बहार बनकर पैदा होता है, और खिज़ा बनकर ढल जाता है। वृद्धावस्था आते–आते सिवाय आसुंओं के, सिवाय पश्चाताप के हमारे जीवन में कुछ भी नहीं होता।

इसीलिए कबीर साहब कहते हैं कि–

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब
पर में परलय होएगा, बहुरि करेगा कब।

लेकिन हम क्या करते हैं? आज, अब करते तो हैं, लेकिन नकारात्मक चीजों को अब करते हैं। क्रोध करना है तो हम सोचेंगे कि अभी करना है। लेकिन क्षमा को हम कल पर टालेंगे। सकारात्मक चीजों को कल पर टालते हैं। नकारात्मक चीजों को अभी करते हैं। दान करना है तो कल पर सोचेंगे, लोभ करना है तो अभी चाहिए कल पर नहीं टालेंगे। प्रतिक्रिया करना है तो बिल्कुल अभी चाहिए। ब्रेक–थ्रू करना है तो कल। जो जीवन की अर्थवत्ता लाने वाली चीजें हैं, उन्हें हम कल पर टालते हैं और जो जीवन को अर्थविहीन करते हैं; उन्हें हम तुरंत कर देते हैं।

गुरजिएफ एक संत हुए हैं। उनके पिता ने उन्हें एक जीवन की कुंजी दी थी कि जब भी

तुम्हें क्रोध आए तो चौबीस घंटे इंतजार करना और गुरजिएफ ने इसका पालन किया। और उसने कहा कि मेरा जीवन ही बदल गया। जब हम क्रोध को कल पर टालते हैं तो हम पाते हैं कि चौबीस घंटे बाद तो बात ही बदल गयी। ऐसा कोई भी भाव नहीं है, जो टिकता है। इसीलिए नकारात्मक भाव को कल पर टालो और सकारात्मक भाव को अभी करो। अभी और अब करो। जिसके लिए रविदास कहते हैं–

बीती आयु भजन नहीं कीन्हा,
सेत भयो तन थर–थर कांपे।
हरि सिमरन नहीं कीता।

आयु बीत गयी और 'सेत भयो' बाल सफेद हो गये। 'तन थर–थर कांपे' शरीर कांपने लगा। 'हरि का सुमिरन नहीं किया' बाकि सब सुमिरन किया, संसार का सुमिरन खूब किया। बच्चों का किया, संबंधों का किया लेकिन बस हरि सिमरन नहीं किया।

सत संगत नहिं गुरु पद सेओ,
प्रभु कीरत नहिं गाई।

सत–संगति कभी नहीं की। हम सोचते हैं जो हमारे हितैषी हैं ये सत–संगति है। कोई हमारा हितैषी नहीं है। जो भी हमारे भीतर कामना पैदा कर दे वह सब कुसंगी हैं, यह बात हमें हमेशा याद रखनी चाहिए। जिसने भी हमारी कामनाओं की अग्नि में घी डाला, जो हमारी कामनाओं का साथ देते हैं, हमें वे लोग बहुत प्यारे लगते हैं। लेकिन वे हमारे हितैषी नहीं हैं।

नहिं मनु रमयो प्रभु चरनन महिं,
तन स्यों परीत द्रिढ़ाई।

तन से हमें प्रीति होती है, आकृति से, आकार से हम अपना ऐसोसिएशन बनाते हैं, प्रीति लगाते हैं। लेकिन–

कह रविदास चलन की बिरियां,
कोउ न होहु सहाइ।।

चलने के समय में कोई सहायता देने वाला नहीं है। हमारा अपना शरीर भी सहायता नहीं देता।

'जाती हुई मय्यत देख के भी, लिल्लाह तुम उठकर आ न सके।
दो चार कदम तो दुश्मन भी, तस्रीफ गवारा करते हैं।'

लेकिन कोई भी दुश्मन हो, दोस्त भी हो, अपने से अपना भी हो; खुद हमारा शरीर भी अंतिम समय में बिल्कुल साथ नहीं देता है। साथ देती है, हमारी आत्मा, हमारी चेतना; वह सदा साथ देती है। साथ देता है गुरु का प्रेम, साथ देता है अहोभाव, साथ देती है हमारी भक्ति। इसके पहले कि मौत हमारे द्वार पर दस्तक दे, हम भक्ति की कला सीख लें। भक्ति में

डूबना सीख लें। भगवान की चिंता न करें। अपने भीतर भक्ति को पैदा करने की कीमिया सीखें और यह कीमिया मिलती है गुरु के चरणों में।

'शिव सूत्र' नामक प्रवचनमाला में ओशो कहते हैं–'गुरु उपाय है'। यह जो जीवन की खोज है, तुम अकेले न कर पाओगे; क्योंकि अकेले तो तुम अपने वर्तुल में बंद हो। तुम्हें उसके बाहर दिखाई भी नहीं पड़ता। उसके बाहर कुछ है, इसकी खबर भी तुम्हें नहीं है। तुम जो हो– अपनी खोल में बंद– तुम समझते हो, यही जीवन है। यह खबर तुम्हें बाहर से किसी को देनी पड़ेगी, जिसने इससे विराट जीवन को जाना हो। तुम अपने घर में कैद हो। तुम्हें पता भी नहीं कि घर के बाहर खुला आकाश है, चांद तारे हैं। यह तो कोई जो चांद तारों को देख कर आया हो और तुम्हें घर में दस्तक दे और कहे कि बाहर आओ, कब तक भीतर बैठे रहोगे!

पहले तो तुम यही पूछोगे कि बाहर जैसी कोई चीज भी है? यही तो लोग पूछते हैं कि परमात्मा जैसी कोई चीज है? आत्मा जैसी कोई चीज है? और तुम चाहते हो कि सिद्ध कर दे कोई घर के भीतर बैठे हुए कि आकाश है। कैसे सिद्ध करेगा? घर के भीतर बैठे, आकाश है, यह कैसे सिद्ध किया जा सकता है? तुम्हें चलना पड़ेगा साथ। वह जो कह रहा है कि आकाश है, उसके पीछे तुम्हें दो–चार कदम उठाने पड़ेंगे; क्योंकि आकाश दिखाया जा सकता है, सिद्ध नहीं किया जा सकता; सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं है। और अगर कोई आकाश को सिद्ध करना चाहेगा घर के छप्पर के भीतर, तो तुम उसको हरा सकते हो। क्योंकि तुम कहोगे, कहां की बातें कर रहे हो? छप्पर है। यहां तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता; दीवारें हैं। क्या प्रमाण है कि बाहर कुछ है? तुम थोड़ा सा आकाश भीतर लाकर मुझे दिखा दो। तो आकाश कोई वस्तु तो नहीं कि भीतर लाई जा सके; कि आकाश को काट कर एक टुकड़ा हम भीतर ले आएं; तुम्हें दिखा दें नमूना ताकि फिर तुम बाहर जा सको। नहीं, परमात्मा का कोई खंड लाकर तुम्हें दिखाया नहीं जा सकता; तुम्हें जाना होगा।

इसीलिए गुरु उपाय है। गुरु का केवल इतना ही अर्थ हैः जिसे अनुभव हुआ हो, जिसने जाना हो, जो कारागृह से छूट गया हो। वही तुम्हें खबर दे सकता है कि तुम कारागृह में हो; और वही तुम्हें खबर दे सकता है कि छूटने का उपाय है; और वही तुम्हें रास्ता बता सकता है कि आओ मेरे पीछे, इस कारागृह में भी द्वार हैं, जहां से बाहर निकला जा सकता है। इस कारागृह में भी ऐसे द्वार हैं, जहां के संतरी सोए हुए हैं। इस कारागृह में ऐसे भी द्वार हैं, जहां के संतरी बड़े सजग हैं। अगर तुमने वहां से निकलने की कोशिश की, तो तुम और मुसीबत में पड़ जाओगे। अभी कम से कम कारागृह में तुम मुक्त होओ। अगर तुमने वहां से निकलने की कोशिश की, जहां संतरी सजग हैं, जहां मुख्य द्वार है, तो तुम काल कोठरी में डाल दिए जाओगे; तो कारागृह और छोटा हो जाएगा।

और ध्यान रहे, नकार से निकलने की कोशिश में तुम काल कोठरी में गिर जाओगे।

अगर तुम लड़े बुराई से, तो तुम और भी बुराई में फेंक दिए जाओगे। वह मुख्य द्वार है; लेकिन वहां से कोई कभी निकल नहीं सकता। कोई कभी निकला नहीं। क्योंकि मुख्य द्वार पर पहरा देना पड़ता है, मुख्य द्वार पर सब सुरक्षा रखनी पड़ती है। लेकिन इस कारागृह में ऐसे द्वार भी हैं जो गुप्त हैं, ऐसे द्वार भी हैं जहां कोई पहरा नहीं है, क्योंकि उस तरफ कोई ध्यान ही नहीं देता कैदी। कैदी भी ध्यान देता है मुख्य द्वार की तरफ।

मैंने सुना है, फ्रांस में ऐसा हुआ क्रांति के दिनों में कि कारागृह के कैदियों ने बगावत कर दी। कैदी बगावत न करें तो ठीक है। कोई दो हजार कैदी थे और कोई बीस संतरी थे, कभी भी छूट सकते थे। बीस संतरी की औकात क्या! बगावत नहीं की थी, क्योंकि कैदी कभी इकट्ठे नहीं होते। कैदी एक-दूसरे के भी दुश्मन होते हैं। साथ होने के लिए इतनी भी सरलता नहीं होती। मित्रता बनाने का उपाय नहीं होता; एक-दूसरे के शत्रु होते हैं। इसलिए बीस संतरी काफी थे। फिर बगावत कर दी, कैदी इकट्ठे हो गए। उन्होंने बगावत कर दी तो जो प्रधान जेलर था वह घबड़ाया। उसने कहा, क्या करें! उसने पहला काम यह किया कि संतरियों से कहा कि मुख्य द्वार की फिक्र छोड़ दो। तुम जाकर छोटी खिड़कियों और दरवाजों पर खड़े हो जाओ। संतरियों ने कहा भी कि यह निर्णय बड़ा गलत है। उस जेलर ने कहा, तुम फिक्र मत करो। मुख्य द्वार बिल्कुल छोड़ दो।

मुख्य द्वार खाली छोड़ दिया गया। वहां एक भी संतरी न था। लेकिन कोई कैदी भाग न सका; क्योंकि छोटे द्वारों पर पहरा लगा दिया गया। जिन पर कभी पहरा न था, उन पर पहरा लगवा दिया। और जहां सदा पहरा था, वहां से पहरा बिल्कुल हटा दिया। अगर चाहते तो सभी कैदी बाहर निकल जाते।

पीछे उस जेलर से उसके संतरियों ने पूछा कि हम समझे नहीं, तरकीब काम कर गई। तो उसने कहा कि बगावत का मतलब है कि कोई बाहर का आदमी भीतर पहुंच गया। इन कैदियों में कोई खुला आदमी बाहर से भीतर पहुंच गया है- कोई आदमी जो जानता है। और जो भी जानता है, वह छोटे द्वारों से निकलने की चेष्टा करवाएगा। जो नहीं जानता, वह हमेशा मुख्य द्वार से निकलने की कोशिश करेगा। तो कल तक हम मुख्य द्वार पर पहरा दे रहे थे; क्योंकि अज्ञानी थे भीतर। लगता है कोई गुरु पहुंच गया।

जीवन में बुराई से लड़ कर निकलने का द्वार मुख्य मालूम होता है। तुम्हारा मन कहता हैः पहले बुराई को मिटाओ, तभी तो साधुता उपलब्ध होगी; पहले गलत को छोड़ो, तभी तो ठीक के लिए राह बनेगी; पहले संसार को बाहर निकालो, तभी तो परमात्मा का सिंहासन खाली होगा। यह मुख्य द्वार है। गुरु तुम्हें इससे निकलने को न कहेगा। क्योंकि इससे कोई कभी नहीं निकल पाता; वहां पहरा भयंकर है। और जो आदमी वहां से निकलने की कोशिश करता है, वह और छोटी काल कोठरियों में डाल दिया जाता है।

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

दसवां प्रवचन

गुरु के श्री चरणों से लगे रहो
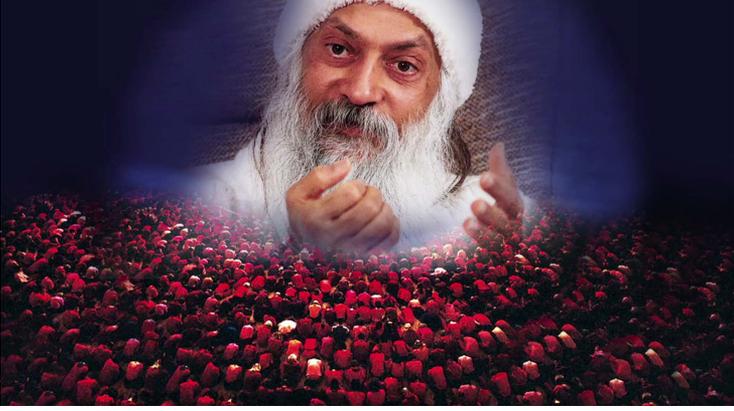
तूमी आमारे फेलो ना मुर्शीद दौयाल होये।
आमी चातोकिनीर मौतो आछी। तोमार चौरोन पाने चेये।।
तोमार औधोम तारोन नाम शुनेछिऽशुने कूल छेड़े बेहाल हायछि
एई भौबो– माझे पोतित होय। फिरतोछि कौलोंकेर डाली बोये।।
गुरू तोमार रूपे नौयोन दिय। आमी जाई जोदी नारोकी होय
दौयाल बोले केउ डाकबे ना। ओगो मुर्शीद आमार हाल देखिये।।
गुरू शुने तोमार नामेर धोनी। आमी डाकितेछि एई रात्रि दिनी
औधीन पाँज बौले गुनोमोनि। आमाय दौया कोरो श्री चौरोन दिये।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

बाउल फकीर पंज शाह की वाणी है– तुम इतने दयाल हो मुर्शीद मुझे न त्यागो। तुम्हारे चरणों की ओर ही मैं चातकनी समान देख रही हूँ। हे सद्गुरू, तुम्हारा नाम अधमतारन है ऐसा सुना है, मुझ अधन को भी तुम तारो। इस संसार में आकर, कलंक की डाली लिए डोलता फिर रहा हूँ। तुम्हारी ओर दृष्टि रहते हुए भी अगर मेरा उद्धार न हुआ गुरुदेव, तब तुम्हे दयाल मुर्शीद कौन कहेगा? हे गुरूदेव! तुम्हारे नाम की ध्वनि सुनकर रात– दिन तुम्हें पुकारता हूँ, इसलिए अपने श्री चरणों का सहारा देकर मुझे तारो। पंज शाह कहते हैं हे गुणमणि! मुझ पर इतनी दया करना ताकि तुम्हारे श्री चरणों से अलग न होऊँ।

'तूमी आमारे फेलो ना मुर्शीद दौयाल होये।

आमी चातोकिनीर मौतो आछी। तोमार चौरोन पाने चेये'

कबीर साहब कहते हैं–

गुरु समान दाता नहिं, याचक शिष्य समान।

तीन लोक की संपदा, सो गुरु दीन्हा दान।।

गुरु का अर्थ ही है जो दिए चला जाता है, जो बेशर्त देता है। लेकिन वह जो दे रहा है, वह अति सूक्ष्म है। अगर हम गुरु से क्षुद्र मांगने गए तो खाली हाथ लौटोगे। गुरु हमें विराट दे रहा है। और अगर हम लेने को आतुर हुए तो हम विराट से भर जाएंगे, और तृप्त परमात्ममय होकर लौटेंगे। सारी संपदा हमारे जीवन में गुरु उंडेलने को तैयार है। बस हमें रिसेप्टिव होना है।

'गुरु समान दाता नहिं, जाचक शिष्य समान।'

लेकिन गुरु देगा कब? हमें प्राप्त कैसे होगा? हमें याचक होना होगा, भिखारी होना होगा, विनम्र होना होगा। अगर हम अकड़े हुए गये, अगर हम चाहें कि हमारा तो हक है, हमें तो मिलना ही चाहिए तो फिर खाली हाथ लौटेंगे। हमें खाली हो जाना है, विनम्र हो जना है, भिखारी की तरह हो जाना है। भिक्षु का क्या अर्थ है– जिसका घड़ा सीधा हो गया। जो अकड़ा हुआ, अहंकारग्रस्त है वह उल्टा घड़ा है। कितना भी गुरु डाले, उल्टा घड़ा कैसे भरेगा? घड़े को सीधा करना है, इस हृदय के पात्र को सीधा करना है। यही भिक्षु का अर्थ है।

तोमार औधोम तारोन नाम शुनेछिऽशुने कूल छेड़े बेहाल हायछि

एई भौबो– माझे पोतित होय। फिरतोछि कौलोंकेर डाली बोये।

अधम का क्या अर्थ है? अधम यानि मूर्च्छा। जितने हम मूर्च्छित हैं उतने ही अधम हैं। उत्तम यानि जितने ही हम जागृत हैं, उतने ही हम प्रेमपूर्ण हैं। अधम जितने मूर्च्छित हैं, उतने ही

प्रेमविहीन होंगे। दोनों एक साथ होता है। जितनी जागरूकता आयेगी वैसे–वैसे जीवन में प्रेम बढ़ता जाएगा। अधम से अधम को भी गुरु तार देता है।

बुद्ध के अनुसार परम अवस्था क्या है? प्रज्ञा+जागरूकता। अर्हत जो हुए हैं, उनके पास प्रज्ञा और करूणा दोनों की मात्रा में बराबरी नहीं है। दोनों का बैलेंस नहीं है। उनके पास प्रज्ञा तो बहुत है, लेकिन करुणा की कमी है। लेकिन जो बोधिसत्व हुए हैं, उनके पास प्रज्ञा भी है और करुणा का भी अतिरेक है। और इसीलिए वे दूसरे को मदद करते हैं।

इस संसार में आकर कलंक की डाली लिए डोलते फिर रहा हूँ– कलंक क्या है? अहंकार एक मात्र कलंक है। आत्मविस्मरण एक मात्र कलंक है। मूर्च्छा एक मात्र कलंक है। चीन में एक घटना हुई–

लाओत्सु नाम का एक फकीर हुआ है। उसके पास एक युवक आया। बहुत सारे प्रश्न थे। जीवन के गूढ़ प्रश्न लेकर आया था। बहुत अकड़कर आया था, ज्ञानी भी था। लाओत्सु से उसने जाकर प्रश्न पूछा, लाओत्सु ने उससे कहा कि प्रश्न का उत्तर तो मिलेगा लेकिन एक शर्त है– एक साल तुम्हें चुप बैठना होगा। उसके बाद उत्तर मिलेगा। वह व्यक्ति एक साल तक चुप बैठा रहा, लेकिन उसे कुछ मिला नहीं और वह छोड़कर चला गया दूसरे गुरु के पास। जब वह दूसरे गुरु के पास जाकर उसने गुरु को बताया कि मैं एक साल तक लाओत्सु के चरणों में रहकर आया हूं। तो दूसरे गुरु ने कहा है कि अगर तुम लाओत्सु के पास से खाली आ गये हो, तो बिल्कुल मेरे पास से दूर चले जाओ। मैं तो लाओत्सु के सामने कुछ भी नहीं हूं। लाओत्सु जैसा करूणावान, प्रज्ञावान व्यक्ति मैने देखा ही नहीं। अगर तुम्हें लाओत्सु के पास से खाली आना पड़ा तो इसका मतलब तुम पात्र ही नहीं हो। तुम्हारे पास पात्रता ही नहीं है। और फिर तुम जाकर दूसरों से कहोगे कि मुझे यहां भी नहीं मिला। तुम बिल्कुल वापस चले जाओ यहां से। वह अन्य गुरुओं के पास गया। वहां पर जब उसने बताया कि मैं लाओत्सु के पास एक साल तक रहकर आया हूं और खाली हाथ लौटकर आया हूं। अन्य गुरुओं ने भी उसको यही कहा। वह जहां–जहां भी गया उसको यही जवाब मिला कि लाओत्सु जैसे प्रतिभाशाली, करूणावान तो हम हैं नहीं। अगर वहां तुम्हें कुछ नहीं मिला तो यहां मेरे पास कुछ भी नहीं हो सकता।

सबने उसे सलाह दी कि लौटकर वापस लाओत्सु के पास जाओ। लाओत्सु के पास वह लौटकर आया। लाओत्सु ने तब बताया कि मैं जब साधना शुरु करने के लिए गुरु के आश्रम में गया तो मेरे पास भी प्रश्न थे। गुरु के चरणों में मैंने भी प्रश्न रखे थे। लेकिन गुरु ने मुझे मौका ही नहीं दिया। उन्होंने कहा चुप होकर बैठो, उत्तर मिलेगा। तीन साल तक मैं चुप बैठा रहा, गुरु ने मेरी तरफ देखा ही नहीं। दूसरे लोगों को देखता, दूसरों से हालचाल पूछता, मुझे एकदम निगलेट कर देता जैसे मैं हूं ही नहीं। मुझे यह स्वीकार हो गया कि गुरु की ऐसी ही मर्जी। और उस दिन मुझे संदेश मिला भीतर से कि गुरु की मर्जी तो यह है कि तुम बिल्कुल खाली हो जाओ। शून्य हो जाओ जैसे तुम हो ही नहीं। और मैं खाली हो गया,

मैं शून्य हो गया। फिर तीन साल बाद गुरु ने मेरी ओर देखा, जैसे गुरु की दृष्टि मुझ पर पड़ी मेरी तो आनंद की सीमा न रही। ऐसी पुलक, ऐसी उमंग ऐसी आनंद की बरसात हो गयी।

मुझे फिर संदेश मिल गया गुरु ने मेरी ओर आंख उठाकर देखा, इसका मतलब मुझे द्रष्टा हो जाना चाहिए। उस दिन से मैं स्वयं को देखने लगा और फ्रिक भी नहीं की कि गुरु मेरी तरफ देख रहे हैं या नहीं। बस मैं स्वयं को देखने में लग गया। तीन साल गुजर गये। फिर तीन साल के बाद गुरु मेरी ओर देखकर मुस्कुराये। फिर तो मेरी और आनंद की सीमा न रही और मुझे संदेश मिला कि मुझे अकारण आनंदित हो जाना चाहिए। और मैं अकारण आनंदित रहने लगा। शून्य हो गया, द्रष्टा हो गया और अकारण आनंदित रहने लगा। फिर एक दिन गुरु ने आकर मुझे गले लगा लिया। बोला तुम्हारा काम पूरा हुआ। तुममें और मुझमें कोई भेद नहीं। जो तुम हो वहीं मैं हूं। 'तत्त्वमसि श्वेतकेतु' और मूझे ज्ञान मिल गया।

गुरु के पास जाकर तुम्हें बैठना सीखना होगा। अकड़ से भरकर, अहंकार से भरकर नहीं। लाओत्स ने कहा कि तुम होते तो कब के भाग गये होते। तुम एक साल बैठे लेकिन तुम्हारे मन में उहापोह चलती रही, प्रश्न चलता ही रहा। गुरु के पास बिल्कुल खाली हो जाना है। बिल्कुल विनम्र हो जाना है गुरु के पास। रिसेप्टिव हो जना है। द्रष्टा हो जाना है, स्वयं को देखना है। दूसरों की तरफ से दृष्टि हटा लो, स्वयं पर दृष्टि ले आओ। आनंदित रहना है, अहोभाव में रहना है। फिर ऐसी संपदा गुरु झोली में डाल देते हैं कि बस जिसके बारे में कहा नहीं जा सकता, अनुभव ही किया जा सकता है।

गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ है, गढ़–गढ़ काढ़े खोट।
अंतर हाथ सहार दे, बाहर बाहर चोट

शिष्य घड़े जैसा है और गुरु कुम्हारा जैसा है। घड़े को जैसे कुम्हारा गढ़ता है, भीतर से एक सहारा देता है और बाहर से चोट देता है। ठीक ऐसे ही गुरु बाहर से हमारी प्रतिमा को निखारने के लिए चोट भी देगा लेकिन एक हाथ से भीतर हमको संभालता रहेगा। उसका प्रेम, उसकी करुणा हमें संभालती भी रहेगी और चोट भी देती रहेगी। हमारे पास जो निरर्थक है उसे वह छांटता रहेगा। गुरु की सारी प्रक्रिया ही यही है। चोट जरूरी है, अन्यथा हम मजबूत नहीं हो पाएंगे। अगर घड़े को कुम्हार के हाथ की थाप न मिले, तो घड़ा मजबूत नहीं हो सकता और पानी में ढ़ह जाएगा। ठीक ऐसे ही अगर शिष्य को अगर गुरु की चोट न मिले तो एक दिन जब परमात्मा की वर्षा होगी तो शिष्य तो टूट ही जाएगा। बिखर ही जाएगा। उस विराट को झेलने के लिए इतनी मजबूती, इतना सहारा बहुत जरूरी है। अन्यथा उस विराट को झेलना संभव नहीं है। उस विराट की वर्षा हो और हम ढहें भी ना। हमारे भीतर उसको लेने की पात्रता बनी रहे। इसलिए गुरु को चोट देने की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है।

गुरू शुने तोमार नामेर धोनी। आमी डाकितेछि एई रात्रि दिनी

औधीन पाँज बौले गुनोमोनि। आमाय दौया कोरो श्री चौरोन दिय।

नाम की ध्वनि– विज्ञान भैरव तंत्र में भगवान शिव ने देवी पार्वती को विधियां दी हैं। सात तरह से नाम को सुनने की विधियां बताई हैं। सभी संत इस नाम की चर्चा करते हैं। नाम यानि परमात्मा। परमात्मा को ही संत नाम कहते हैं। भारत में एक प्रथा है कि पत्नी पति का नाम नहीं लेती। ऐसे ही संत परमात्मा नहीं कहते, ईश्वर नहीं कहते, वे कहते हैं– नाम। यह श्रद्धा, एक आदर सूचक है कि कैसे हम उसका नाम लें। संत परमात्मा को ओंकार, सतनाम, नाम आदि नामों से पुकारते हैं।

नाम की ध्वनि सुनकर रात दिन पुकारता हूं। नाम की ध्वनि रात–दिन कैसे सुनोगे? लोग सोचते हैं रात–दिन का अर्थ–अखंड–कीर्तन। लोग अखंड कीर्तन शुरु कर देते हैं, कोई भी नाम रात–दिन नहीं जप सकते। अखंड नहीं जप सकते। दो नाम के बीच में एक गैप आएगा ही आएगा। अखंड कीर्तन हो ही नहीं सकता। अखंड कीर्तन बोलकर नहीं हो सकता, अखंड कीर्तन होता है सुनकर। इस अस्तित्त्व में जो ध्वनि निरंतर गूंज रही है, जो अखंड है, अटूट है; उसमें डूबने से अखंड कीर्तन होता है। उसमें रात–दिन डूबा जा सकता है। जब उसमें रात–दिन डूबते हैं, गुरु के चरणों में बैठते हैं तो जीवन धन्य हो जाता है।

आओ, परमगुरु ओशो के अमृत वचन सुनते हैं–

'गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काको लागूं पाया।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो बताय।।'

गुरु तो द्वार हैः आज नहीं कल, गोविन्द प्रकट होगा। गुरु तो मार्ग हैः आज नहीं कल, मंजिल आएगी। और पहली घड़ी में तो ऐसा होगा कि गुरु भी मौजूद होगा और गोविन्द भी मौजूद होंगे। तब ऐसी घड़ी में किसके पैर छुऊं। तो कबीर कहते हैं बड़ी दुविधा में खड़ा हो गया। 'गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काको लागूं पाय' पहले किसके पैर छुऊं!

पहला अर्थ– बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो बताय। तो कबीर कहते हैं कि बलिहारी गुरु तुम्हारी कि जब मैं दुविधा में था, तुमने तत्क्षण इशारा कर दिया कि गोविंद के पैर छुओ। बलिहारी गुरु आपने, जिन गेविन्द दिये बताय। जैसे ही मैं दुविधा में था, आपने इशारा कर दिया कि गोविन्द के पैर छुओ, क्योंकि मैं तो यहां तक था। मैं तो राह पर लगे हुए मील के पत्थर की तरह था, जिसका इशारा था, आ गया, मंजिल आ गई, अब मेरा कोई काम नहीं। अब तुम गुरु को छोड़ो, गोविन्द के पैर छू लो।

दूसरा अर्थ है– गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काको लागूं पाय। बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो बताय। दुविधा में हूं, किसके पैर लगूं। गुरु गोविन्द दोउ खड़े हैं। फिर मैंने गोविन्द को छोड़ा गुरु के ही पैर छुए; क्योंकि उसकी ही बलिहारी है, उसी ने गोविन्द को बताया है।

'गुरु रूठै नहिं ठौर' और गुरु रूठ जाए तो कोई उपाय नहीं; क्योंकि गुरु के बिना

हरि के पास तो जा नहीं सकते। हरि बिना गुरु के पास जा सकते हैं, गुरु के बिना हरि के पास नहीं जा सकते।

'तीन लोक नौ खंड में गुरु ते बड़ा न कोय।
करता करे कर सके, गुरु करे सो होय।।'

पूरे विराट अस्तित्त्व में, तीन लोक नौ खंड में गुरु से बड़ा कोई नहीं है। परमात्मा जो नहीं कर सकता, वह गुरु करता है। परमात्मा क्या नहीं कर सकता? परमात्मा अपनी ओर नहीं मोड़ सकता। गुरु परमात्मा की ओर हमे मोड़ सकता है। गुरु परमात्मा की ओर हमारी दृष्टि ले जाता है। गुरु द्वार है परमात्मा का। परमात्मा स्वयं अपनी ओर हमें नहीं मोड़ सकता। परमात्मा स्वयं की ओर बुला नहीं सकता हमें। गुरु माध्यम है। इसीलिए तो सहजो गुरु को परमात्मा से ऊपर रखती है। सहजो कहती है– परमात्मा तुमने किया क्या? इस संसार में फंसा दिया, इस आवागमन के चक्कर में फंसा दिया। गुरु ने सारी ममता काटी गुरु ने सारे चक्रों से पार किया। आवागमन के चक्र से मुक्त किया। इसलिए गुरु रूठे, नहीं ठौर है। हरि रूठे, गुरु ठौर है।

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

ग्याहरवां प्रवचन

अति गोपनीय रूप में विद्यमान

जारे आमी डाकी दौयाल बोले
आछे औखोण्डो ब्रोम्हाण्डो। पौरे नित्योकौमोले।।
आछे मानुष ओति गोपोने
चौन्द्रो– शूर्जो किरौन नाई शेखाने,
ओ शे औटोल बिहारीर किरौन, आशे द्विदौले।।
आछे औधोर नाम धोरे
जीबेर शाद्धो कि धौरे ताहारे
रूपेर किरौन मिले भाग्गोफौले गुरूर दौया होले।।
देखले जाला जाय गो दूरे,
चौरोन धोरले जाबे कौर्मो फांद केटे।
औखिलगुरू कौल्पोतोरू चौरोन किशे मिले।।
जोगेश्शोरीर मौहाजोगे,
शे रूपेर किरौन आशे पाताले,
ओ शेई शुभोजोगे जोदी मिले केन्दे पाँज बौले।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

बाउल फकीर पंज शाह कहते हैं–जिसे मैं दयाल स्वामी कहकर पुकारूँ वह तो इसी अखण्ड ब्रम्हाण्ड में नित्यकमल रूप में सदा विद्यमान है। वह दयाल प्रत्येक मानुष में अति गोपनीय रूप में विद्यमान है जहाँ चन्द्र– सूर्य की किरणें भी न जा पातीं हैं। वह अटल अविचल बिहारी आज्ञाचक्र में आसन जमाये है। वह दयाल प्रत्येक जीव में अधर नाम से विद्यमान हैं। गुरू की जिस पर दया होतीं है अनंत सौभाग्य से, उसे अधर नाम से परिचय होता है। गुरू हीं हैं जो उस दयाल अधर नाम से परिचित करवाते हैं। उसे पाकर सकल कर्म फंद कट जाते हैं। और जिनके चरणों में सब मिल जाता है। पंज शाह रूदन करते हुए कहते हैं– मेरा वह शुभ संजोग, शुभ योग कब होगा, जब मुझे गुरु मिलेंगे।

जारे आमी डाकी दौयाल बोले

आछे औखोण्डो ब्रोम्हाण्डो।

पौरे नित्योकौमोले।।

साइंस्टिस कहते हैं कि ब्रह्मांड का अर्थ है फैलाव। जो निरंतर फैल रहा है, निरंतर विर्स्तीण हो रहा है। कमल खिलावट का प्रतीक है। यह जो ब्रह्मांड है, निरंतर खिल रहा है। चौदहवीं की चांद की तरह। पूर्णता कभी नहीं आती। निरंतर खिलता रहता, बढ़ता रहता, फैलता रहता है। पूर्ण से पूर्णतर की ओर। गुरु नानक जी का वचन है–

'आदि सचु, जुगादि सचु, है भी सचु, नानक होसी भी सचु।'

शाश्वत है, फिर भी हो रहा है। शाश्वत है, फिर भी फैल रहा है, फिर भी प्रतिदिन बढ़ रहा है, विर्स्तीण हो रहा है। हैराक्लाइटस का वचन है– अस्तित्त्व की नदी में हम दोबारा पैर नहीं रख सकते। क्योंकि अस्तित्त्व प्रतिपल हो रहा है। कैसे हम उस नदी में दोबारा पैर रख सकते हैं। जो कल था वह आज नहीं है। कुछ पलों बाद भी वह नहीं है। प्रतिपल सबकुछ फैलता जा रहा है। और यह अस्तित्त्व असीम है। कैसे इसकी अनुभूति होगी? बाहर इसकी अनुभूति नहीं होगी।

आछे औखोण्डो ब्रोम्हाण्डो। पौरे नित्योकौमोले।

हमारे भीतर मौजूद है यह। अपने भीतर की आंख से भीतर के असीम को देख सकते हैं। इसकी कोई सीमा नहीं है। यह भीतर की आंख असीम को देख सकतीं हैं। अस्तित्त्व असीम हैं, सब ओर वहीं है। उसका हीं होना है। अनंत, असीम, जो कभी समाप्त नहीं होता।

आछे मानुष ओति गोपोने चौन्द्रो– शूर्जो किरौन नाई शेखाने,
ओशे औटोल बिहारीर किरौन, आशे द्विदौले।।

पलटूद्रास का वचन है–
चलहु सखी वहिं देस, जहवां दिवस न रजनी।
ऐसा देश जहां न दिन होता है न रात होती है।
नानक का वचन है–
'नानक सुन्न समाधि में, नहीं सांझ नहीं भोर।'
उस अतंस लोक में न दिवस है, न रजनी है।
शूर्जो किरौन नाई शेखाने,

वहां सूरज की कोई किरण नहीं, चंद्र की कोई किरण नहीं। सूरज और चांद की किरण नहीं है, इसका मतलब वहां समय की कोई बात ही नहीं है। सूरज से भी समय का अहसास है। समय की धारणा सूरज से बनी। पृथ्वी सूरज का चक्कर लगा रही है, इससे वर्ष की धारणा बनी। चांद सूरज का चक्कर लगा रहा है तो माह की धारणा बनी। ये जो समय की धारणा है, वह यह बता रही है कि चांद और सूरज उस देश में, उस अंतरलोक में नहीं जाता। जिसके लिए ईसा मसीह कहते हैं–देयर शेल बी टाईम नो लॉगर। वहां पर समय की कोई बात ही नहीं है।

'पाप–पुण्य नहीं, चांद–सूरज नहीं, नहीं सजन नहीं सजनी।'

वहां पाप और पुण्य की भी बात नहीं है। कोई सोचे की पुण्य करने से परमात्मा मिल जाएगा। क्या पापी से परमात्मा दूर हो गया? नहीं, ऐसा नहीं है। परमात्मा पापी से दूर नहीं हो गया। कोई सोचे की पुण्यात्मा परमात्मा के ज्यादा करीब हो गया, ऐसा नहीं है। पुण्यात्मा के पास परमात्मा ज्यादा हो गया, ऐसा नहीं है। एक कहानी है–

बोधिधर्म चीन गया। वहां पर सम्राट वू आए और उन्होंने बोधिधर्म को प्रणाम किया। और कहा कि मैंने इतने पुण्य किये। इतने धर्मशालाएं बनायीं, इतने भिक्षुओं की मैंने मदद की, उनकी सेवा की, उनके लिए बहुत कुछ किया। मेरा स्थान कहां होगा स्वर्ग में, मेरा भविष्य क्या है?

बोधिधर्म हंसा और बोला– तुम्हारा स्थान नर्क में है। वह तो हतप्रभ रह गया। ऐसा क्यों कहा बोधिधर्म ने? जब तक कर्ताभाव है, जो भी कर्ताभाव में जी रहा है वह नर्क में ही जी रहा है। वह सदा तनाव में जीएगा। सदा बैचेनी में जीएगा। जितना–जितना कम कर्ताभाव होगा, उतनी–उतनी शांति आती जाएगी।

'पाप–पुण्य नहीं, चांद–सूरज नहीं, नहीं सजन नहीं सजनी।'

वहां समय की कोई धारणा नहीं है। वहां कोई द्वैत नहीं है। द्वैत के पार वह जो सबको देख रहा है, जो पाप को भी देख रहा है, जो पुण्य को भी देख रहा है, जो समय को भी देख रहा है, जो भी चीज समय में शुरु हुई और खत्म हुई उसे देख रहा है। शरीर समय में शुरू हुआ तो समय में खत्म हो जाएगा। मन भी शुरू हुआ और मन भी खत्म हो जाएगा। ऐसी ही भावनाएं भी शुरू हुईं और एक दिन इनका भी अंत आ जाएगा। जो भी शुरू होता है वह एक दिन खत्म हो जाता है। उसको जो देखने वाला है, वह है साक्षी। अंतसलोक में जाकर, साक्षी की अनुभूति होती है और उसका द्वार है आज्ञाचक्र।

'आछे औधोर नाम धोरजीबेर शाद्धो कि धौरे ताहारे।
रूपेर किरौन मिले भाग्गोफौले गुरूर दौया होले।
देखले जाला जाय गो दूरे, चौरोन धोरले जाबे कौर्मो फाँद केटे।'

अधर नाम यानि ओंकार। मीराबाई संत रविदास के पास गई। वहां मीराबाई को गुरु रविदास के द्वारा ओंकार का ज्ञान मिला। इसे अधर नाम कहते हैं। जब कोई शिष्य गुरु के चरणों में जाता है, मिटता है, तब उसकी झोली ओंकार से भर जाती है। उसको बाउल अधर नाम कहते हैं। उसे संत सतनाम कहते हैं। असली कर्ता पुरुष वही है।

'देखले जाला जाय गो दूरे, चौरोन धोरले जाबे कौर्मो फाँद केटे।'

सारे कर्मों के बंधन कट जाते हैं, उस नाम को जानने से, उस नाम में डूबने से। क्योंकि असली कर्ता पुरुष तो वही है। और जो उस नाम में डूबता है, जो उस ओंकार में डूबता है– वह जानता है कि करने वाला मैं नहीं हूं। उसके भीतर अकर्ताभाव आता–जाता है।

सारे धर्मों का सार, सारे शास्त्रों का सार एक ही है। एक शब्द में कहा जाए तो– कर्ताभाव से अकर्ताभाव पर आ जाओ। कर्ता पर संसारी रहता है। कर्ता से अकर्ताभाव में जो आ गया, वही असली संन्यासी है। और उसके सारे कर्मबंधन कट जाते हैं। क्योंकि मैं करने वाला ही नहीं हूं। 'प्रभु डोरी हाथ तिहारे' हमारे जीवन की डोर प्रभु तुम्हारे हाथ में है। अब तू जा कराये, वही हम करेंगे। हमारा कर्ताभाव इसमें कुछ भी नहीं है। तो ऐसा व्यक्ति पाप और पुण्य के पार, द्वैत के पार अद्वैत में स्थापित हो जाता है।

बायजीद के शिष्यों की महफिल लगी थी। उसमें से एक शिष्य ने पूछा कि मेरी मोह–ममता बहुत ज्यादा है। मेरी ममता का बंधन छूटता ही नहीं, मेरी पकड़ तो छूटती ही

नहीं है, दिनों–दिनों बढ़ती ही जा रही है। बायजीद अचानक उठा और उसने एक खंबे को जोर पकड़ लिया और चिल्लाने लगा। मुझे बचाओ, मुझे बचाओ! शिष्य हंसने लगे कि बात क्या है? तब बायजीद ने कहा– कुछ समझ में आया? किसने पकड़ा। मैंने खंबे को पकड़ा या खंबे ने मुझको पकड़ा? ऐसे ही हमने कर्म को पकड़ा, या कर्म ने तुमको पकड़ा। तुमने ममता को पकड़ा कि ममता ने तुमको पकड़ा। तुम्हारा सोचना, तुम्हारा देखना, तुम्हारा जागना; बस सारे कर्मफंद वहीं कट जाते हैं। जागरण की आग से सारे कर्मफंद कट जाते हैं। सारे मैल धुल जाते हैं।

'औखिलगुरू कौल्पोतोरू चौरोन किशे मिले
जोगेश्शोरीर मौहाजोगे, शे रूपेर किरौन आशे पाताले,
ओ शेई शुभोजोगे जोदी मिले केन्दे पाँज बौले'

परमगुरु ओशो कहते हैं– 'पलटू कहते हैं कि मुझसे पूछो तो कहूंगा–वह घड़ी शुभ, वह दिन शुभ, जब प्रभु की स्मृति आ जाए।

'पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।'

जैसे अचानक वसंत आ जाए, अचानक स्मृति आ जाए।

'पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।'

फूल खिल जाएं। ऐसे जिस घड़ी तुम्हारी चेतना में स्वरूप का स्मरण आता है, अपने भीतर छिपे हुए, अपने भीतर विराजे हुए प्रभु की स्मृति उठती है, सुरति उठती है, ध्यान का जिस क्षण जन्म होता है!

'पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।'

ध्यान की वह शुभ घड़ी, सुरति का वह अपूर्व अवसर, वहीं सब कुछ है। वही लगन, वही महूरत। लेकिन वह परम अवसर केवल वर्तमान में घटित होता है। न बीते कल में, न आने वाले कल में। अभी हो सकता है। अभी या कभी नहीं।

'पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।'

मगर वह नाम याद तभी पड़ता है जब इतनी तैयारी हो– मिट जाने की, समर्पित हो जाने की, समाप्त हो जाने की। लेकिन लोग बड़े अजीब हैं, टाले जाते हैं, टाले जातें। मेरे पास आते और कहते हैं संन्यान लेना है, जरूर लेना है। तो मैं कहता हूं– लेना है तो ले ही लो। कहते हैं लेंगे लेकिन जरा व्यवस्था जमा लें। इतनी जल्दी भी क्या है? संन्यास तो शास्त्रों में कहा है कि पचहत्तर साल के बाद लेना चाहिए। एक क्षण भी मत टालो, क्योंकि एक क्षण का भी कोई भरोसा नहीं। और यह मत कहो कि ठीक घड़ी आएगी, ठीक क्षण

आएंगे तब लेंगे। पचहत्तर साल के तो हो जाएंगे पहले, फिर ले लेंगे। और भारत की तो औसत उम्र 36 साले है, तो इममें तो औसत उम्र में तो कोई संन्यासी हो ही नहीं सकता।

लोग मरने के बाद सुनना चाहते हैं रामनाम सत्य है, पहले मत कहना। पहले तो उनको उलझे रहने दो उनके मन के जालों में। संन्यास को टाले जाते हैं, धर्म को टाले जाते हैं, सत्य को टाले जाते हैं, राम को टाले जाते हैं– सरकाए जाते हैं: आगे, और आगे, और आगे। सरकाते–सरकाते ही कब्र में गिर जाते हैं। एक पैर कब्र में पड़ जाता है तब भी अभी आशा संसार में ही लगी रहती है; अभी मन दौड़ता ही रहता है।

पलटू के इस प्यारे वचन को ह्रदय में खोद ले–

'पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी, याद पड़ै जब नाम।'

जब राम याद आ जाए, तब वही घड़ी शुभ है, वही घड़ी शुभ है।

'लगन महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम।।'

शे रूपेर किरौन आशे पाताले,

ओ शेई शुभोजोगे जोदी मिले केन्दे पाँज बौले।।

वह शुभ योग कब होगा। वह शुभ घड़ी कब आएगी, जब मुझे गुरु मिल जाएंगे। गुरु मिले तभी जीवन में भाग्य का उदय होता है। उसी दिन हमारा भाग्योदय होता है, जिस दिन हम गुरु के चरणों में गए। वरना कोई उपाय नहीं है कि हम आधार नाम को जान पाएं। गुरु की कृपा से हमें आधार नाम से परिचय होता है, ओंकार नाम से परिचय होता है; और हम सारे कर्मफंद के पार; आवागमन के पार एक शाश्वत जीवन में प्रवेश कर जाते हैं।

बारहवां प्रवचन

साधना बिना कैसी फकीरी?

शाधोन जेने कौरोन कौरो, तौबे हौबे फोकीरी।
थाको भाबेर बौशे रौशे मिशे, नित्योधौन बौर्तोकोरी।।
ओरे पौरोशेते पौरोमबोस्तु, चेतौन थेको ताई धोरी।
जैनो रोशेर पाके, जाशने बेंके, धारा ते मोरबी धूरी।।
जौले कौमोल कौमोले जौल, आशछे शौदा मूल धोरी।
खेलछे पितृफूले, बोह्मोनाले, दौशोम दौले शेई बारी।।
निर्मौल–शौत्त कौरो आत्ता, शौ–शूख शौत्ता त्यैग कोरी।
मिछे शौंग शेजो ना, ढ़ौंग कोरो ना, भोजबे जोदि श्रीहोरी।।
हाउड़े बौले भालोबाशी, हृदौय शोशी, शौर्बोदापूर्णो हेरी।
आछे आद्दो पौरे, शूधाधारे, रूद्रो–दार ब्रोह्मोपूरी।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

बाउल फकीर हाउड़े गोसाईं की वाणी है– साधना पथ को जाने बिना कैसे फकीरी करोगे? भाव के बिना उस नित्य धन को नहीं पाया जा सकता। वही पारस तो परम वस्तु है, जिसे चैतन्य होकर जाना जा सकता है। बेकार रास–रंग में फंसकर उसी धारा में मर जाओगे। जैसे जल में कमल खिलता है और उसी जल में कमल गलता है, लेकिन मूल नहीं गलता। ठीक उसी प्रकार मूल को पकड़ना होता है। कमल जल में ही गल जाता है, लेकिन मूल नहीं गलता। अतः मूल को पकड़ो। पितृफूल अर्थात् सहस्रार में वह कमल खिलता है और दवसें द्वार अर्थात् मूलाधार में उसकी वर्षा होती है। आत्मा की निर्मल सत्ता ही उसका अनुभव करती है, उस परम वस्तु को प्राप्त करने के लिए समस्त सुखों का त्याग करना होता है। श्री हरि को पाना है तो मिथ्या स्वांग, ढ़ोंग छोड़ना होगा।

हावड़े गोसाईं कहते हैं– वह अनाहत चक्र में स्थित है और मैं ह्रदय–शशि से प्रेम करता हूं। सदा उसे निहारता हूं। क्योंकि आदिरूप, वह अमृतसुधा, रस नाम, वह रूद्र द्वार ब्रह्मपुरी ही तो है। जहां नाम रस का पान करता हूं।

शाधोन जेने कौरोन कौरो, तौबे हौबे फोकीरी।

साधना पथ को अगर हम जानते नहीं हैं, साधना के जाने बिना फकीरी कैसे हो सकती है? फकीरी वेश धारण करने से फकीरी नहीं हो सकती। हमने देखा संन्यासियों को तो भीतर अनुकरण की इच्छा पैदा हो गयी और हमने फकीर का वस्त्र धारण कर लिया, गेरुवा वस्त्र डाल लिये। यह फकीरी नहीं होगी। पता ही नहीं है कि यह फकीर कर क्या रहा है? रास्ता क्या है? साधना पथ क्या है?

कुछ लोग संसार की जिम्मेदारियों से भागकर संसार से पलायन करना चाहते हैं तो फकीर का वेश धारण कर लेते हैं। कुछ आलसी और सुस्त लोग, मिस फिट लोग संन्यास धारण कर लेते हैं, बिना जाने कि जाना कहां है? बस केवल अनुकरण मात्र, संन्यासी का वेष धारण किया और फकीरी हो जाएगी, कुछ नहीं करना पड़ेगा। संसार के दुखों से भागकर देखा। कुछ लोगों ने देखा कि संसार में जिए, अपने लोगों को प्रेम किया, दुख मिला, संताप मिला, पीड़ा मिली। खुद के जीवन से मिली और भीतर एक

वैराग्य पैदा हो गया। और वे संसार छोड़कर चले गये। कुछ लोगों ने दूसरों को दुखी देखा, सोचा कि यह दुख हमारे जीवन में न आए, यह जिम्मेदारी हमें न उठानी पड़े। ऐसे घबराकर भय से संसार को छोड़कर चले गये, फकीर हो गये। यह फकीरी नहीं है।

फकीरी क्या है? छोड़ने पर जिसका जोर नहीं है, वह फकीर है। पाने पर जिसका जोर है। फकीरी वह होती है कि हमें परमात्मा पाना है। अब बहुत देख लिया संसार, ये संसार के खिलौने अब हमें नहीं उलझाते। इनसे हमें तृप्ति नहीं मिलती। हमे तृप्ति किस चीज से मिलेगी? निरंतर जो कुछ मिलता है संसार में और प्यास को भड़का जाता है। तो ऐसी कौन सी चीज है जो तृप्त करेगी? उस वस्तु की खोज के लिए कुछ लोग निकल जाते हैं और उन्हें संसार छोड़कर जाना नहीं पड़ता। जो संसार छोड़कर जाते हैं, उनके लिए एक बहुत प्यारा गीत याद आता है–

'संसार से भागे फिरते हो, भगवान को तुम क्या पाओगे?
इस लोक को भी अपना न सके, उस लोक में भी पछताओगे।
यह पाप है क्या? यह पुण्य है क्या? रीतों पर धर्म की मोहरें हैं।
हर युग में बदलते धर्मों को, कैसे आदर्श बनाओगे?
यह भोग भी एक तपस्या है, तुम त्याग के मारे क्या जानो?
अपमान रचियेता का होगा, रचना को अगर ठुकराओगे।'

अगर तुम जगत से घृणा करते हो, अगर तुम सृष्टि से घृणा करते हो तो सृष्टा से कैसे प्रेम करोगे? सृष्टि से अगर प्रेम हो जाए तो निश्चित रूप से सृष्टा तक हम पहुंच जाएंगे। उसके लिए क्या चाहिए? भाव के बिना उस नित्य धन को नहीं पाया जा सकता। मन के पार जाना है, मनातीत होना है; विचारो के पार जाना है लेकिन भाव के पार नहीं जाना है। भावना में डूबना है। भावना क्या है?

मन महि सिंचहु हरि हरि नाम। अनुदिनु कीरतनु हरि गुण गान।।
ऐसी प्रीति करहु मन मेरे। आठ पहर प्रभ जानहु नेरे।।
कहु नानक जाके निरमल भाग। हरि चरनी ता का मनु लाग।।

मन के पार जाना है। मनातीत होना है, भावातीत नहीं होना है। भाव ही द्वार है। भाव से भगवान होता है। अगर भाव शून्य होकर इस जगत को देखोगे तो क्या दिखाई देगा? कुछ भी नहीं दिखाई देगा। अगर भाव से भरकर प्रेम से भरकर इस जगत को

देखोगे तो एक–एक पत्ते से परमात्मा का प्रेम टपकता हुआ नजर आएगा। भक्तियोग से परमात्मा को, उस परम वस्तु को पाना है। ज्ञान योग बहुत कठिन है।

ज्ञानयोग से सीधे अपनी बीइंग पर आना बहुत ही कठिन है। कर्मयोग से भी बहुत कठिन है। लेकिन हृदय का द्वार आत्मा के सर्वाधिक निकट है। थिंकिंग से हमें फीलिंग पर आना है। फीलिंग से हमें बीइंग पर आना है। वह परम वस्तु जिसे हम चैतन्य रहकर पा सकते हैं। वह परम वस्तु चैतन्य ही है। और उस चैतन्य को हम चैतन्य होकर, जागरूकता में जीकर वह जीवन में और–और बढ़ता जाता है। और एक दिन हम पाते हैं कि हम उस परम जागरण की अवस्था में पहुंच गए। उसे ही बाउल फकीर पारस कहते हैं। परम वस्तु कहते हैं।

'ओरे पौरोशेते पौरोमबोस्तु, चेतौन थेको ताई धोरी।'

वही पारस तो परम वस्तु है जिसे चैतन्य रहकर जाना जा सकता है। चैतन्य ही साध्य है, चैतन्य ही साधन है। मार्ग भी वही है, मंजिल भी है। परम वस्तु भी वही है, पारस भी वही है। जिसे छू दे वह चैतन्यमय हो जाए। तन और मन उसी के उजाले से प्रकाशित है।

जैनो रोशेर पाके, जाशने बेंके, धारा ते मोरबी धूरी।।

संसार के भोगों में उलझे हुए हैं। संसार में तो रहना है लेकिन कैसे हम जल में कमलवत रह सकें? वैसे जैसे राजा जनक इस संसार में रहें।

पृथ्वी में देही रहे, परमेश्वर में प्राण।

कैसे वह अवस्था आए? अहं से मुक्ति मिले तो ही ब्रह्म में प्रतिष्ठा मिले।

सुनो ओशो के अमृत वचन–

'अहंकार का अर्थ हैः अपने चैतन्य को किसी और चीज से जोड़ लेना। एक आदमी कहता है कि मैं बुद्धिमान हूं, तो उसने बुद्धिमानी से अपने अहंकार को जोड़ लिया। उसकी चेतना अशुद्ध हो गयी। तुमने देखा, दूध में कोई पानी मिला देता है तो हम कहते हैं, दूध अशुद्ध हो गया। लेकिन अगर पानी मिलाने वाला कहे कि हमने बिल्कुल शुद्ध पानी मिलाया है, फिर? तब भी तुम कहोगे, अशुद्ध हो गया। शुद्ध पानी मिलाओ या अशुद्ध, यह थोड़े ही सवाल है– पानी मिलाया? इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुमने शुद्ध पानी मिलाया, तो भी दूध तो अशुद्ध हो गया। और अगर गौर करो तो दूध ही अशुद्ध नहीं हुआ,
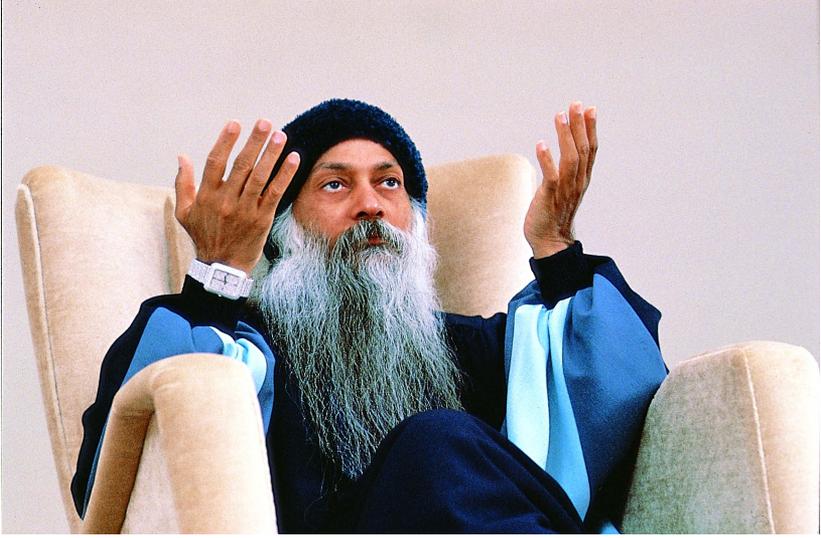
पानी भी अशुद्ध हो गया। पानी और दूध दोनों शुद्ध थे अलग-अलग। मिलकर अशुद्ध हो गये। विपरीत और विजातीय और अन्य से मिलकर उपद्रव होता है। चैतन्य जैसे ही अपने से भिन्न से मिल जाता है। तुमने कहा, मैं बुद्धिमान...। बुद्धि यंत्र है; उसका उपयोग करो। बुद्धिमान मत बनो। यही बुद्धिमानी है- बुद्धिमान मत बनो! तुमने कहा, मैं बुद्धिमान- उपद्रव शुरू हुआ! दूध पानी से मिल गया। फिर तुम्हारी बुद्धि कितनी ही शुद्ध हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुमने कहा, मैं चरित्रवान- दूध पानी से मिल गया। अब तुम्हारा चरित्र कितना ही शुद्ध हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। दुश्चरित्र और सच्चरित्र दोनों के अहंकार होते हैं।'

'पृथ्वी में देही रहे, परमेश्वर में प्राण' यह जीवन की शैली कैसे आयेगी? जल में खिला कमल जल में ही गल जाता है।

खेलछे पितृफूले, बोह्मोनाले, दौशोम दौले शेई बारी।।

जैसे कमल है, वह पानी में ही पैदा होता है। पानी में ही बढ़ता है और पानी में ही

गल जाता है। लेकिन इस कमल की जड़ कभी भी नहीं गलती। पानी में सदा स्थित है। जड़ नहीं गलती, फूल गल जाता है। तो कैसे हम इस संसार में रहें, और इस संसार से अछूते रहें, इस संसार में गले नहीं; तो कैसे बात बनेगी? हमें मूल को पकड़ना है। यह मूल क्या है? यह मूल है अधर नाम। यह मूल है ओंकार। उस ओंकार तक कैसे जाएंगे? चैतन्य होकर, जागरूक होकर, संवेदनशील होकर, प्रेमपूर्ण होकर।

गोसांई कहते हैं– मैं तो हृदय–शशि से प्रेम करता हूं सदा उसे निहारता हूं।

हाउड़े बौले भालोबाशी, हृदौय शोशी, शौर्बोदापूर्णो हेरी।

हाउड़े गोसांई हृदय–शशि से प्रेम की बात करते हैं। अध्यात्म की पूरी यात्रा मस्तिष्क से नाभि तक की है। हृदय मध्य का पड़ाव है।

'जिस्म की बात नहीं है अपने दिल तक जाना है,
लंबी दूरी तय करने में वक्त तो लगता है।
प्यार का पहला खत लिखने में वक्त तो लगता है।'

अपने अंतर्तम में जाना है। कैसे हमारी ऊर्जा मस्तिष्क से हृदय पर आये और कैसे यह ऊर्जा हृदय तल से अपनी बीइंग पर आए, जहां पर हमारा वास्तविक होना है। जहां पर वह परम वस्तु है। जहां पर वह पारस है। वह स्थान है हमारी नाभि। मस्तिष्क से नाभि की यात्रा ही अध्यात्म की यात्रा है।

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

तेरहवां प्रवचन

विषयानंद से ब्रह्मानंद की ओर

ब्रोह्माकारा आनोन्दोधारा शौहोस्रारे दीप्ताकार।
ताते ब्रोह्मोखेत्रो नित्योभूमि आनोन्दोमौय शूधार धार।।
आछे त्रिकोणरूपे मौहाजौन्त्रो, बिम्बो ढाका चौमोत्कार।
ताहे पुरूष नारी रूप–माधुरी, शोम्भू–ओम्बू–बिन्दू पार।।
हौंशो तौत्तो, शाधोनतौत्तो, शोहं–तौत्तो शाद्धो तार।
ताते नाड़ी मूले त्रिशूल फेले, शिबेर आशोन चौमोत्कार।।
कि मा–शोक्ती रौक्तोबौरोन, ओतूलन रूप–प्रोचार।
आछे पुरूष्झरौतोन शुभ्रो बौरोन जोगाजोगे कौर्णोधार।।
भाबेर भाबूक पाय ना भाबी घौरे दैखे औंधोकार।
हाउड़े भेबे बौले, शेई कौमोले, गोले जावा शोन्धि तार।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

बाउल फकीर हाउड़े गोसाँई ने गाया है– इस ब्रह्माकार सहस्रार में आनन्दधारा सतत प्रवाहित है। इस ब्रह्मक्षेत्र से ही आनंद स्वरूप सुधा–रस नित्य प्रवाहित हो रही है। वहाँ से होते हुए यह आनंदधारा आज्ञाचक्र में त्रिकोण रूप में महायंत्र बिम्ब, शिव–शक्ति की रसमाधुरी शम्भु–अम्बू और बिन्दू रूप में अवस्थित है। तीन तत्त्व हंसतत्त्व, साधनतत्त्व तथा सोहम्‌तत्त्व मानुष में ही चमत्कार दिखा रहे हैं। मा शक्ति तो रक्तवर्णा है, अतुलनीय जिसकी शोभा है। पुरूष रतन शुभ्र वर्ण है जो आज्ञाचक्र में कर्णधार है और सदा दीप्तमान है। भाव के बिना इसकी अनुभूति नहीं की जा सकती। इसके बिना सब अंधकार है।

ब्रोह्माकारा आनोन्दोधारा शौहोस्रारे दीप्ताकार।

ताते ब्रोह्मोखेत्रो नित्योभूमि आनोन्दोमौय शूधार धार।।

आनंद के दो रूप हैं– विषयानंद, ब्रह्मानंद। विषयानंद में काम रस निम्नतम है। शंकर कहते हैं–

भज गोविंदम्, जो बैठा सबके अंतरतम।

पर नर कुत्ते सा भटक गया, सूखी हड्डी में अटक गया।

'स्वामी' होकर दासत्व तजो। गोविंद भजो। गोविंद भजो।।

शंकराचार्य कहते हैं– जैसे एक कुत्ता है। वह हड्डी को चूसता है। उसे लगता है कि इस हड्डी से ही रस आ रहा है। जबकि उसकी जीभ लहू–लुहान हो जाती है और अपने ही खून का स्वाद लेता हुआ सोचता है। कारण हड्डी है, हड्डी से यह रस मिल रहा है। हड्डी से यह आनंद आ रहा है। ऐसे ही मनुष्य सोचता है कि दूसरे से यह रस आ रहा है। जबकि आनंद हमारे भीतर मौजूद है, दूसरे के कारण नहीं। हम खुद ही स्वामी हैं और स्वामी होकर दास हो गये हैं। हम डिपेन्डेंट हो गये हैं। हम सोचते हैं कि दूसरे के कारण सुख मिलेगा। यह है काम रस। और जब हम ज्यादा से ज्यादा ऊपर उठते हैं, तो प्रेम रस।

नर नारी में, नारी नर में, आनंद खोजता है पर में।

सच्चिदानंद जबकि बैठा, आवाज दे रहा भीतर में।

दूजे से सुख का मोह तजो। गोविंद भजो। गोविंद भजो।

दूसरे से मिलने से सुख होगा, दूसरे के साथ बैठने से सुख होगा, दूसरे का साथ सुख देगा, इस भ्रम से हम उसे कुछ देना चाहते हैं और उससे कुछ लेना चाहते हैं। यह है प्रेमरस। हम सोचते हैं कि उससे सुख मिलेगा, इसलिए हमारे जीवन की सारी ऊर्जा, हमारी चेतना दूसरे की ओर प्रतिपल बहती जा रही है। लेकिन यह भी भ्रम है। दूसरे के कारण सुख नहीं मिल रहा है, यह सुख हमारे भीतर मौजूद है और हमेशा इसमें डुबकी मारी जा सकती है। जो इस सदासुख तक पहुंच गया, उसे ब्रह्मानंद कहते हैं। उस सुख को जो अकारण मौजूद है, वह आनंद जो हमारा स्वभाव है, वह हमारी चेतना का स्वभाव है। सच्चिदानंद परमात्मा को कहते हैं। 'रसो वैसः' जो की रसपूर्ण है। हमारा होना रसपूर्ण है। हमारी बीइंग रसपूर्ण है और इस रस को हम बाहर खोजते हैं।

आइये सुनते हैं कि परमगुरु ओशो आनंद के बारे में क्या कहते हैं–
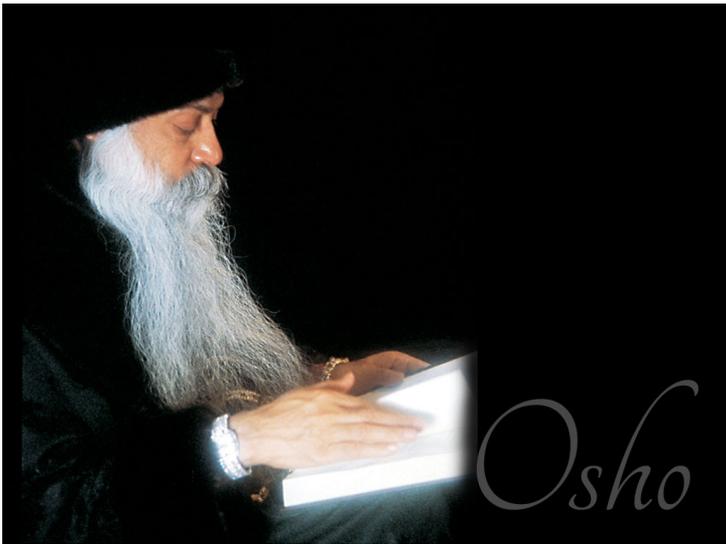
'एक बात ख्याल में रखनाः आनंद सत्य की परिभाषा है। जहां से आनंद मिले, वही सत्य है। इसलिए तो हमने परमात्मा को 'सच्चिदानंद' कहा है। आनंद उसकी आखिरी परिभाषा है। सत्य से भी ऊपर, चित से भी ऊपर, आनंद को रखा है, 'सच्चिदानंद' कहा है। सत्य एक सीढ़ी नीचे, चित एक सीढ़ी नीचे– आनंद परम है।

जहां से आनंद बहे, जहां से आनंद मिले, फिर तुम चिंता मत करना, सत्य के करीब हो। जैसे कोई बगीचे के करीब आता है तो हवाएं ठंडी हो जाती हैं, पक्षियों के गीत सुनाई पड़ने लगते हैं, शीतलता अनुभव होने लगती है– तब बगीचा दिखाई भी न पड़े तो भी अनुभव में आने लगता है कि राह ठीक है, बगीचे की तरफ पहुंच रहे हैं। ऐसे ही, जैसे ही तुम सत्य की तरफ पहुंचने लगते हो, आनंद झरता है, मन शीतल होने लगता है। संतुलन आने लगता, सहिष्णुता बढ़ती है, सुख बढ़ता है। एक उमंग घेरे रहती है– अकारण! कोई कारण भी दिखाई नहीं पड़ता। न कोई लाटरी मिली है, न कोई धंधे में बड़ा लाभ हुआ है, न कोई बड़ा पद मिला है। ऐसा भी हो सकता था कि पद था वह भी गया; हाथ में जो था वह भी खो गया; धंधा भी डूब गया– लेकिन अकारण एक उमंग है कि भीतर कोई नाचे जा रहा है, कि रुकता ही नहीं! तो बुद्धि कहेगीः कहीं पागल तो नहीं हो गये हो? ये तो पागलों के लक्षण हैं।'

आछे त्रिकोणरूपे मौहाजौन्त्रो, बिम्बो ढाका चौमोत्कार।
ताहे पुरूष नारी रूप–माधुरी, शोम्भू–ओम्बू–बिन्दू पार।।

सात चक्रों से हमारी जीवन की ऊर्जा प्रभावित हो रही है। ये जो सात चक्र हैं हमारे जीवन के ये आत्मा के मिलन प्वाइंट हैं। इन सात चक्रों से हम अपनी आत्मा तक पहंचे सकते हैं। इन सात चक्रों से जब हम अपने आत्मतत्त्व में स्थित होते हैं, हमारी ऊर्जा स्वयं की ओर प्रभावित होने लगती है। हमारी ऊर्जा हम पर ही आनंद बन कर बरस जाती है। यह जो अस्तित्व है, यह विपरीत से बना हुआ है।

ताहे पुरूष नारी रूप–माधुरी, शोम्भू–ओम्बू–बिन्दू पार।।

पुरुष और स्त्री जब मिलते हैं तब एक नया जीवन मिलता है। हर पुरुष में नारी तत्त्व और पुरुष तत्त्व है। हर नारी में पुरुष तत्त्व और नारी तत्त्व है। चीन में यिंन–यांग की धारणा है– हमारे भीतर जो पुरुष ऊर्जा और स्त्रैण ऊर्जा है, जब इन दोनों का मिलन होता है तो हमारे भीतर अकारण आनंद बरस पड़ता है। पुरुष–नारी का मिलन। पॉजीटिव और निगेटिव का मिलन। विद्युत धारा में पॉजीटिव और निगेटिव होते हैं तभी बिजली आती है। लेकिन परमात्मा जो है, इन दोनों के पार है। यह जो त्रिकोण की धारणा है– परमात्मा द्वंद्व के पार है।

अर्द्धनारीश्वर की बात हमने इस देश में कही है। यानि परमात्मा पुरुष भी है और परमात्मा स्त्री भी है। लेकिन इसे इस ढंग कह सकते हैं कि परमात्मा दोनों के पार है। जब हमारे भीतर बुद्धत्व का फूल खिलता है तो न हम नारी होते हैं और न हम पुरुष होते हैं। हम नारी भी हैं, हम पुरुष भी हैं और हम दोनों के पार हो जाते हैं। यह जो तीसरा तत्त्व है, यह द्वैत के पार अद्वैत में स्थित है।

हौंशो तौत्तो, शाधोनतौत्तो, शोहं–तौत्तो शाद्धो तार।
ताते नाड़ी मूले त्रिशूल फेले, शिबेर आशोन चौमोत्कार।।

त्रिशूल की जो धारणा है, यह जो त्रिकोण की धारणा है, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान्, त्रिमूर्ती– ब्रह्मा, विष्णु और महेश, इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान इससे पदार्थ बना है। सारा अस्तित्व तीन गुणों का खेल है– त्रिकोण।

हौंशो तौत्तो, शाधोनतौत्तो, शोहं–तौत्तो शाद्धो तार।

तीन तत्त्वों का सार है सारा जीवन। हमारे भीतर सोहम्‌तत्त्व जिससे सांस आ रही है। जब इस सांस की आवाज को हम सुनते हैं, जब हम सोहम् अजपा मंत्र में डूबते हैं, तब हम ओंकार तक जाते हैं। यह जो हंसतत्त्व है वह साधने जैसा है। यह मंजिल है। पतंजलि कहते हैं जब हम अपने भीतर साधना करते हैं– जब हमारी ऊर्जा चौथे चक्र पर आती है। तो विभिन्न चमत्कार के द्वार खुल जाते हैं। कई चमत्कार हमारे जीवन में घटित हो जाते हैं और कई सिद्धियां भी मिल जाती हैं। लेकिन इन सिद्धियो में, इन चमत्कारों में नहीं उलझना है। सिद्धियों की सिद्धि और चमत्कारों का चमत्कार हमारा आत्मतत्त्व है। वही हमारी मंजिल होनी चाहिए। हमें कहीं भी रुकना नहीं चाहिए। पतंललि के योग साधन में साधनपाद, समाधिपाद, कैवल्यपाद, विभूतिपाद में चमत्कारों व सिद्धियों से बचने के लिए उन्होंने सदा संदेश दिया है।

कि मा–शोक्ती रौक्तोबौरोन, ओतूलन रूप–प्रोचार।
आछे पुरूषरौतोन शुभ्रो बौरोन जोगाजोगे कौर्णोधार।।

पुरूष रतन शुभ्र वर्ण है जो आज्ञाचक्र में कर्णधार है और सदा दीप्तमान है। भाव के बिना इसकी अनुभूति नहीं की जाती। धरमदास कहते हैं–

साहेब, तेरी देखौं सेजरिया हो।

लाल महल के लाल कंगूरा, लालिनि लागि किवरिया हो।।
लाल पलग के लाल बिछौना, लालिनि लागि झलरिया हो।।
लाल साहेब की लालिनि मूरत, लालि लालि अनुहरिया हो।।
धरमदास बिनवै कर जोरी, गुरु के चरन बलिहरिया हो।।

ऐसे गुरु को बलिहारी जाते हैं, जिसने भीतर जाना सिखा दिया। वहां भीतर जहां सब कुछ प्रकाश ही प्रकाश है। जब हम आज्ञाचक्र के द्वार से भीतर जाते हैं तो हमारे जीवन में प्रकाश ही प्रकाश बरस जाता है। प्रकाश के इंद्रधनुषीय रंग जीवन में उतर आते हैं। जीवन चमत्कार हो जाता है। तीसरे नेत्र से जब हम आलोक दर्शन करते हैं, वह प्रकाश जो की स्रोतहीन है, शाश्वत, शीतल है। उसके दर्शन से जीवन धन्य हो जाता है।

आछे पुरूषरौतोन शुभ्रो बौरोन जोगाजोगे कौर्णोधार।।

भीतर हमारा पुरुष तत्त्व है। पुरुषों का सकंल्प का केंद्र है–आज्ञाचक्र। जो पुरुष स्वभाव के लोग हैं, वे सकंल्प के माध्यम से आत्मतत्त्व तक जाते हैं। जो स्त्रैण चित्त के लोग हैं वे समर्पण के माध्यम से, भक्ति मार्ग के माध्यम से आत्मतत्त्व तक पहुंचते हैं।

भाबेर भाबूक पाय ना भाबी घौरे देखे औंधोकार।

बाउल कहते हैं– भाव के बिना यात्रा असंभव है।

उपनिषद का एक वचन है–अज्ञानी अंधकार में भटकते हैं और जो तथाकथित ज्ञानी हैं, वे महा अंधकार में भटकते हैं। जिसने शास्त्रों से ज्ञान को अपने भीतर उतार लिया है, वे कभी परमात्मा तक नहीं पहुंच पाते हैं। यही एक बाधा है। यह ज्ञान उनके लिए बाधा हो जाती है। ज्ञान नहीं चाहिए, ध्यान चाहिए। ज्ञान नहीं चााहिए, भाव चाहिए। भाव के बिना अंधकार ही अधंकार है। भाव के बिना जीवन की सारी यात्रा ठहर गयी है, रुक गई है, जीवन में कोई प्रकाश नहीं है। भाव जीवन में प्रकाश ले आता है।

गुरु के प्रति भाव, अस्तित्त्व के प्रति अहोभाव हमारी आध्यात्मिक यात्रा को सहज कर देता है।

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

चौदहवां प्रवचन

बाहर भी हरि, भीतर भी हरि

घौरे राईख्या पौरोम रौतोन, ओ भोला मोन
मिछे कैनो मोरिश घूरे
पौरेर ताले नाईच्या फिरे
काना शाईज्या दिन दूपूरे
देखलीं ना तारे ओरे हातेर काछे पातीं तारे
चोख मेइल्या खूँजले पौरे।।
हा रे शूज़ौनेर शौंगो धौर
गुरूधौनेर कारबार कौर
शौदा गुरूर नाम शौर
ओ तोर षौड़ो रिपू नौफोर होइया
मोन जोगाबे जींबोन भोरे।।
औष्टो पाशे पोड़बीं ना बाधा
शोलो आना होइबे शाधा
पिंओ गुरूर नाम शुधा
ओरे काम कांचोनेर जौतो बाधा
शौबीं क्रोमे जाबे शोरे।।
जींबोन मौरोन थाकबे ना ज्ञान
थाकबे ना आर मान ओभींमान
दींन गोपींनाथ कोय दिंन थाकते ऐखोन
डूईब्या थाक ओरे प्रेम शागोरे।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

बाउल फकीर गोपीनाथ कहते हैं– ऐ भोले मन! घर में ही तो तेरे परम रतन हैं, फिर क्यों व्यर्थ ढूँढ़ता है? दूसरे के कहने से काना बनकर भरी दोपहरी में क्यों नाचता फिरता है? आंखे खोलकर देख जरा, वो तेरे पास ही है। सज्जन व्यक्ति का साथ ले और गुरु के पास उस अमूल्य धन को जान ले। सदा गुरू का नाम स्मरण कर, जिससे षट्रिपू दूर होंगे। नाम रस से तेरा मन उमंग से भरा रहेगा। अष्टपाश के बंधन में पड़कर समय नष्ट न कर, तब ही तेरी साधना सोलह आने खरी होगी। गुरू नाम– सुधा का रस पीते रहने से कामनी कंचन जैसी सांसारिक बाधाएँ दूर हो जायेंगी। नामरस में इतना तेज है कि जीवन–मरण के ज्ञान से, बोध से भर जायेगा और तेरे सकल मान अभिमान दूर हो जायेंगे। दीन गोपीनाथ कहते हैं समय रहते उस प्रेम– सागर में डूब जा मन।

घौरे राईख्या पौरोम रौतोन, ओ भोला मोन
मिछे कैनो मोरिश घूरे
पौरेर ताले नाईच्या फिरे
काना शाईज्या दिन दूपूरे

ऐ भोले मन! तू जिसे ढूंढ़ने चला है, वह तेरे भीतर ही है। गोपीनाथ कहते हैं– बाहर जाने से नहीं मिलेगा। काशी जाओ, काबा जाओ, क्रियाकांड करो कुछ हासिल होने वाला नहीं है। बाहर भी हरि, भीतर भी हरि। यद्यपि बाहर भी हरि है, लेकिन पहले उसकी अनुभूति हमें भीतर जाकर करनी होगी।

दत्तात्रेय कहते हैं–
बाहर भी हरि, भीतर भी हरि।
है जगह न कोई, जहां वो नहीं।
फिर क्यों पिंचास सा दौड़ रहा?

मनुष्य कैसे बाहर दौड़ रहा है। क्योंकि आजतक उसने जो भी जन्म लेने के बाद हासिल किया है, देखा है वह बाहर जाने से किया है। बस उसकी एक ही आदत बन गयी है कि बाहर चलो, बाहर भागो, परमात्मा भी बाहर से मिलेगा।

मन द्वार है। मंदिर शब्द का यही अर्थ है– मन+दिर=मंदिर। मन का दरवाजा। मन के द्वार से हम अपने भीतर, अपने निराकार में प्रवेश करते हैं। भीतर के प्रभु में प्रतिष्ठित होते हैं। पंडित–पुरोहित–पादरी हमें क्या समझाते हैं? दान करो, पुण्य करो, तपस्या करो, उपवास करो, व्रत करो, तीर्थ जाओ, सदा बाहर उलझाये रखते हैं। याद रखना, धर्म का दुश्मन

नकली धर्म है। धर्म का दुश्मन नास्तिकता नहीं है, झूठी आस्तिकता है। पता नहीं है परमात्मा का लेकिन थोथी आस्तिकता हमें सच्चे धर्म से वंचित रखती है। संत क्या कहते हैं?

घर में वस्तु धरी नहीं सूझै, बाहर ढूंढ़त जाती।
पानी में मीन प्यासी, मोहे देखत आवत हासी।।

पानी में जो मछली है वह खुद को प्यासी अनुभव करती है। जबकिं वह पानी में ही है। और पानी उसे वहीं उपलब्ध है। लेकिन वह सोचती है कि पता नहीं कहां पानी मिलेगा। ऐसे ही मनुष्य की हालत है। परमात्मा के प्रति जब वह प्यास से भरता है, तब वह बाहर जाता है। बाहर उलझाव हैं। बाहर उलझाने वाले बहुत हैं। बाहर धर्म के धंधे बहुत हैं।

कबीर साहब कहते हैं– कस्तूरी कुंडल बसै।

हे पागल! जैसे मृग के नाभि में कस्तूरी है और वह उस सुगंध को बाहर खोजता है। ऐसे ही परमात्मा का आनंद, ब्रह्मानंद हमारे भीतर है। सच्चिदानंद हमारे भीतर है। लेकिन उसकी खोज में दर–बदर भागते रहते हैं और ऐसे ही जीवन का अंत आ जाता है।

आइये सुनें, परमगुरु ओशो क्या कहते हैं–

'तुम्हें अगर परमात्मा को खोजना है तो तुम्हें वह मंदिर खोजना होगा। उसने ही बनाया, वह मंदिर तुम्हीं हो। इसलिए कबीर कहते हैं– कस्तूरी कुंडल बसै। कस्तूरी तो पैदा होती है मृग की नाभि में। वह सुगंध बड़ी मादक है। कस्तूरी जैसी कोई गंध ही नहीं है। बड़ी आकर्षक है। चुंबक जैसा उसमें आकर्षण है। मस्ती से भर देती है वह गंध। कस्तूरी मृग को गंध आनी शुरु आती है, उसके समझ में नहीं आती है कि वह गंध कहां से आ रही है? और वह भागता है मदहोशी में कि कहीं से आ रही होगी। आ तो रही है। तो वह स्रोत की तलाश करता है। वह भागा फिरता है। वह जहां भी जाता है वहीं गंध को पाता है। वह करीब–करीब पागल हो जाता है। सिर लहु–लूहान हो जाता है भागते–भागते। वृक्षों में, जंलग में खोजता है, कहां से गंध आ रही है। और गंध उसके भीतर से आती है– कस्तूरी कुंडल बसै।

कबीर ने बड़ा प्यारा प्रतीक चुना है। जिस मंदिर की तुम तलाश कर रहे हो वह तुम्हारे कुंडल में बसा है; वह तुम्हारे ही भीतर है; तुम ही हो। तुम्हारे अंतर्आकाश में जलता हुआ उसका दिया। तुम्हारे भीतर उसकी ज्योतिर्मयी छवि मौजूद है। तुम मिट्टी के दिये भला हो ऊपर से, भीतर तो चिन्मय की ज्योति हो। मृण्यम होगी तुम्हारी देह; चिन्मय है तुम्हारा स्वरूप। मिट्टी के दिये तुम बाहर से हो; ज्योति थोड़े ही मिट्टी की है। दिया पृथ्वी का है; ज्योति आकाश ही है। दिया संसार का है; ज्योति परमात्मा की है।

लेकिन तुम्हारी स्थिति वही है जो कस्तूरी मृग की हैः भागते फिरते हो; जन्मों–जन्मों से तलाश कर रहे हो, उसकी जो तुम्हारी भीतर ही छिपा है। उसे खोज रहे हो, जिसे तुमने

कभी खोया नहीं। खोजने के कारण ही तुम वंचित हो। यह कस्तुरी–मृग पागल ही हो जाएगा। यह जितना खोजना उतनी मुश्किल में पड़ेगा; जहां जाएगा, कहीं भी जाए, सारे संसार में भटके तो भी पा न सकेगा। क्योंकि बात ही शुरु से गलत हो गई– जो भीतर था उसे उसने बाहर सोच लिया, क्योंकि गंध बाहर से आ रही थी, गंध उसे बाहर से आती मालूम पड़ी थी।

तुम्हें भी आनंद की गंध पागल बनाये दे रही है। तुम भी आनंद की गंध को बाहर से आता हुआ अनुभव करते हो। कभी किसी स्त्री के संग तुम्हें लगता है आनंद मिला। कभी बांसुरी की ध्वनि में आनंद मिला। कभी भोजन के स्वाद में लगा कि आनंद मिला। कभी पद की शक्ति में, अहंकार में लगा कि आनंद मिला। बड़ा जंगल है। हर वृक्ष से तुम सिर तोड़ चुके हो। लहु–लूहान कभी यहां, कभी वहां; कभी इधर–कभी उधर खोजते हो और झलक मिलती है; झलक इसलिए मिलती है कि कस्तूरी कुंडल बसे। जहां भी जाएगा वहीं झलक मिलेगी। आनंद तुम्हें अपने ही कारण मिलता है।'

कबीर साहब कहते हैं–

मोकों कहाँ ढूढ़े बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौने क्रिया–कर्म में, नहीं योग बैराग में।
खोजी होय तो तुरते मिलिहाँ, पल भर की तालास में।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में।

कहां ढूढ़ते हो मुझे? मैं तो तुम्हारे पास ही हूं। मंदिर में नहीं हूं, मस्जिद में नहीं हूं; काबे में नहीं हूं, कैलाश में नहीं हूं; क्रिया कर्म में नहीं हूं, योग में नहीं हूं; वैराग्य में नहीं हूं; जो सच्चा खोजी है उसे तुरंत मिल जाऊंगा। पल भर में परमात्मा मिल सकता है। कहां खोजो?

कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में।

ये जो आती–जाती सांस है, इन सांसों के जो बीच का गैप है; उस गैप को जिसने पकड़ना सीख लिया; उसे वह परम ध्वनि के रूप में परमात्मा मिल जाता है और उसकी अंतर्यात्रा का आरंभ हो जाता है। हम क्या सोचते हैं– जो मेरे पास है वह बहुत बड़ी बात नहीं है। सदा दूसरे के पास जो है; पड़ोसी के पास ज्यादा खास है। मेरे पास तो बिल्कुल सामान्य सा है; कुछ नहीं है मेरे जीवन में। निकट का हमें कुछ भी दिखाई नहीं देता; सदा हमारी आंखें दूर देखती हैं।

नजरें तो टिकी हुई थी, चांद और सितारों पर।
खुद अपने ही आंगन की जमीं पर फिसल गये।
अरमान थे हंसी के, अश्कों में ढल गये।

आये बहार बन के, खिज़ा बन के ढल गये।

सब परमात्मा से भरे–पूरे आते हैं। बच्चे को देखो, कितना परमात्मा से भरा हुआ है। कैसा सच्चिदानंद स्वरूप दिखता है वह। और धीरे–धीरे वह क्या हो जाता है? धीरे–धीरे उम्र बढ़ती जाती है और इस जीवन से आनंद का कपूर उड़ता जाता है। और हम अपने आप को निस्तेज और निरधार पाते हैं। क्यों? क्योंकि सदा हमारी नजरें बाहर हैं। सदा हमारी नजर अपने से बहुत–बहुत दूर है।

शौदा गुरूर नाम शौर
ओ तोर षौड़ो रिपू नौफोर होइया
मोन जोगाबे जीबोन भोरे।।

सदा गुरु का नाम स्मरण कर, इससे तेरे षट्रिपु दूर जो जाएंगे; मन सदा उमंग से भर जाएगा। गुरु के नाम के स्मरण से षट्रिपु कैसे दूर होंगे? गुरु की मौजूदगी हमारे अहंकार को गलाती है। गुरु के चरणों में बैठना, गुरु के चरणों में मिटना, गुरु के चरणों में पिघलना। सारे षट्रिपुओं की जो मुख्य जड़ है–वह अहंकार है; यहीं से सब कुछ आता है। यहीं से काम, यहीं से क्रोध, सारे षट्रिपु यहीं से आते हैं। अगर गुरु के चरणों में हमारा अहंकार गल जाए; और कोई उपाय ही नहीं है। गुरु के चरणों में वही बैठ सकता है, गुरु की याद में वही रह सकता है जो अपने को मिटाने को राजी है। जो अपने अहंकार को गलाने को राजी है; और जिस दिन अहंकार गला, षट्रिपु भागे, उस दिन हमारा ओंकाररूपी स्वभाव प्रकट हो जाता है। और जिस दिन यह ओंकाररूपी स्वभाव हमारे भीतर प्रकट होता है; मन आनंद से भर जाता है। अकारण उमंग से भर जाता है। जिस उमंग को नये–नये व्यक्तियों में, परिस्थितियों में खोजते थे; उस उमंग को हम अकारण पाते हैं। वह हमारी संपदा है। हम इसे जन्म से साथ लाये हैं। गुरु की मौजूदगी हमेशा हमारे जीवन को उर्ध्वगमन की दिशा देगी।

जब मंसूर की मृत्यु हो रही थी, मंसूर को जब सूली दी जा रही थी, तो वह हंस रहा था। लोगों ने उससे पूछा कि मंसूर तुम क्यों हंस रहे हो? मसूंर ने कहा– मैं इसलिए हंस रहा हूं कि किसी बहाने तुम्हारी नजरें तो उपर उठीं। इसलिए इस खुशी से हंस रहा हूं। गुरु की मौजूदगी हमेशा उर्ध्वगमन की प्रेरणा देतीं हैं। परमात्मा की ओर खींचतीं हैं।

हम क्या करते हैं? हम अखबार पढ़ते हैं। हम टी.वी. देखते हैं। हम ऐसी–ऐसी परिस्थिति में जीते हैं जिसमें हमारी ऊर्जा सदा संसार की ओर बहिर्गामी होती है; अधोगामी हो जाती है। नहीं, हम ऐसी परिस्थिति में जिएं– सज्जन का सत्संग करें। सज्जन कौन है? जो हमारी कामनाओं को क्षीण कर दे। जो हमें हमारी वास्तविकता की ओर, हमारे वास्तविक घर की ओर हमारे कदमों को बढ़ा दे; वह सज्जन है।

औष्टो पाशे पोड़बी ना बाधा
शोलो आना होइबे शाधा

अष्टपाश के बंधन में पड़कर समय नष्ट न कर। तभी तेरी साधना सोलह आने खरी होगी। समस्त बंधनों की एक ही जड़ है; समस्त बंधनों का एक ही कारण है– वह कारण है हमारी मूर्च्छा। मूर्च्छा एक मात्र कारण है बंधन का। बंधन कैसे खुलेंगे? होश से। होश की साधना, जागरण की साधना करनी पड़ेगी। कैसे शुरु करें यह जागरण? सब कहते हैं कि हम तो जागे ही हुए हैं; संसार में काम कर रहै हैं; सब कुछ तो कर रहे हैं, सोये हुए कैसे करेंगे? नहीं, हमारी जागरण की दिशा बाहर की ओर है। इस जागरण की दिशा को भीतर की ओर मोड़ो।

पहला जागरण शारीरिक क्रियाओं से शुरु करो। अपने शरीर के प्रति जागो। दूसरा जागरण अपनी श्वास के प्रति होश रखो। और आगे बढ़ो, विचारों के प्रति जागरूकता। और आगे बढ़ो, भावनाओं के प्रति जागरूकता। ऐसी सजगता, ऐसी जागरूकता, फिर अंततः अपनी चेतना के प्रति सजग हो जाओ। सिर्फ चैतन्य मात्र हो जाना है, यही साधना सोलह आने खरी है। परमगुरु ओशो कहते हैं– जिस धर्म में साक्षी नहीं, वह धर्म नहीं है। जहां साक्षी से संबंध नहीं हैं, वह धर्म नहीं है, वह कुछ और ही है।

पिओ गुरूर नाम शुधा
ओरे काम कांचोनेर जौतो बाधा
शौबी क्रोमे जाबे शोरे।।

गुरू नाम का सुधारस पीने से सदा सांसारिक बाधाएं दूर हो जाती हैं। गुरु नाम की सुधा क्या है? गुरु जिस नाम से परिचय कराता है; गुरु जो हमें नाम देता है; उस नाम में डूबने से सारे आकर्षण, कामनी–कंचन दूर हो जाएंगे। ऐसे समझें कि हमारा मन एक गिलास के समान, एक पात्र के समान है। इस मन में जो कामनाएं भरी हैं; वासनाएं भरी हैं वो हवा की तरह हैं। अब इसे कितना निकालोगे? जितना निकालोगे उतना ही पाओगे कि हवा कहीं से भी घुस जाएगी। लेकिन एक उपाय है–इस गिलास में अगर हम पानी डालते जाएं तो जितना–जितना पानी का तल बढ़ेगा, हवा वहां से निकलती जाएगी। ऐसे ही अगर हम अपने मन के पात्र में ओंकार का जल भरते जाएं, भरते जाएं तो हम पाएंगे कि हमारे भीतर से कामनाएं विदा हो गयीं। और हम पाएंगे कि हम वीतकाम हो गए।

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

पंद्रहवां प्रवचन

समर्पण का मार्ग सर्वोपरि

द्विदौले हौय बारामखाना
चोतुर्दौले साँई बिराज कौरे, मृनाले हौय शौदोर खाना।।
द्वादोश दौल ओई ह्रदमोन्दिरे, औष्टोदौल मानुषेर शौरोबौरे
शोलोदौले कौथा बौल, डाकले ओमनी जाय गो शुना।।
गुरूमुखेर पौद्मोबाक्को, हदौये कौरो ना ओइक्यो
तौबे आत्ता हौबे शुद्धो, पूरबे मोनेरो बाशोना।।
चाँद चौकोरे जूगौल खैले, नीरेर शौंगे नूर चौले
शाहा एरफान बौले लालपौद्दो, पेले भोजले हौबे काँचाशोना।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

बाउल फकीर एरफान शाह कहते हैं– द्विदल अर्थात् आज्ञाचक्र में ही महल है। चतुर्दल अर्थात् मूलाधार चक्र में ब्रह्म विराजित है, जो सुषुम्ना नाड़ी से सहस्रार तक जुड़ा है। हृदय में अवस्थित द्वादश दल यानि अनाहत चक्र ही मंदिर है। अष्टदल पद्म मानुष रूपी सरोवर में ही है। सोलह दल युक्त पद्म यानि विशुद्ध चक्र से निकल रही परम ध्वनि को ध्यान से सुनो। गुरूमुख ही सर्वोपरि पद्मवाक्य है, जिसे हृदय से एकाकार कर लो। तभी तेरी आत्मा शुद्ध होकर सकल मनोरथ पूर्ण करेगी। जहाँ चाँद–चकोर की नित्य लीला चल रही है, ऐसे सहस्रार चक्र में ध्यान लगाओ जहां नीर और नूर दोनों साथ चलते हैं। बाउल संत एरफान शाह कहते हैं लाल पद्म अर्थात् मूलाधार में न ठहर जाना वरना कच्चा सोना ही रह जाओगे।

द्विदौले हौय बारामखाना

द्विदल अर्थात् आज्ञाचक्र में ही महल है। मौलाना रूम का एक वचन है– खसखस के दाने के अंदर शहर खुदा का बसता है। कोई इसे तीसरा तिल कहता है, कोई इसे शिवनेत्र कहता है, कोई तीसरी आंख कहता है। यह अंतर महल का द्वार है– जिसमें परमात्मा विराजमान है। यह प्रवेश द्वार है उस महल का जिसमें परमात्मा विराजमान है। ब्रह्म विराजमान है।

सभे थोक परापते जे आवै इकु हथि।
जनमु पदारथु सफलु है जे सचा सबदु कथि।
गुर ते महलु परापते जिसु लिखिआ होवै मथि।।
मेरे मन एकस सिउ चितु लाइ।
एकस बिनु सभ धंधु है सभ मिथिआ मोहु माइ।।
लख खुसीआ पातिसाहीआ जे सतिगुरु नदरि करेइ।

सद्गुरु के चरणों में आने से, जीवन में जब सद्गुरु की नजर हो जाती है, तब सारे भेद खुलने शुरु हो जाते हैं; जीवन में खुशी ही खुशी बरस जाती है। कहां है वह द्वार? किस द्वार पर हम दस्तक दें, कैसे हम उस महल में प्रवेश करें? इसकी विधि गुरु ही बताता है।

चोतुर्दौले साँई बिराज कौरे, मृनाले हौय शौदोर खाना।।

चतुर्दल अर्थात् मूलाधार चक्र में ब्रह्म विराजित है जो सुषुम्ना नाड़ी से सहस्रार तक जुड़ा है। सुषुम्ना नाड़ी क्या है? हमारे दाएं व बाएं स्वर जब सम हो जाते हैं तब सुषुम्ना नाड़ी खुलती है। तब यहां से ऊर्जा प्रवाहित होती है, मूलाधार से सहस्रार तक। जो सुप्त है वह

ब्रह्म ऊर्जा उर्ध्वगमित होकर हमें ब्रह्म की अनुभूति देती है। हमारे वास्तविक स्वरूप की, गोविंद रूप की अनुभूति देती है।

हमारे भीतर सबकुछ बीजरूप में मौजूद है। सब जगह खिलने का वर्णन किया है– चतुर्दल, द्विदल कमल। कमल अर्थात् खिलना। हमारे भीतर जो केंद्र हैं– वे कली रूप में सोए पड़े हुए हैं। लेकिन जब केंद्र साधना से खुलते हैं, तो हर केंद्र पर, हर चक्र पर एक रहस्य की अनुभूति होती है। अद्भुत आध्यात्मिक अनुभूतियों से हम गुजरते हैं। हम सब वही संभावना लेकर पैदा हुए हैं– जो बुद्ध लेकर पैदा हुए थे, जो नानक लेकर आये थे, जो जीसस लेकर आये थे। कैसे हम उन संभावनाओं को पोषित करें? कैसे हम उन संभावनाओं में पानी डालें ताकि वे संभावनाएं वृक्ष का रूप धारण करे और उसमें फूल खिल सकें।

द्वादोश दौल ओई ह्दमोन्दिरे, औष्टोदौल मानुषेर शौरोबौरे

हृदय में अवस्थित अनाहत चक्र ही मंदिर है। अष्टदल पद्म मानुष रूपी सरोवर में ही है। भाव से ही मंदिर बनता है। अनाहत चक्र से भाव का संबंध है। हमारा भाव ही मंदिर बनाता है वरना तो वह बिल्डिंग है। पत्थर की मूर्ति क्या है, पत्थर ही तो है लेकिन हमारा भाव उसमें प्राण प्रतिष्ठा दे देता है। हमारा भाव उसे परमात्मा बना देता है।

जब भी पूज़ाभाव उमड़ा, पूछ मत आराध्य कैसा?
मृत्तिका के पिंड से कह दे तू मेरा भगवान बन जा,
जानकर अनजान बन जा।

एक पत्थर हमारे लिए भगवान हो सकता है। सामने भगवान मौजूद हैं और हम इतने सोए हुए हो सकते हैं, इतने जड़ हो सकते हैं कि हमें सब जगह जड़ता ही दिखाई देती है। हमारे भाव की जागरूकता सब चीजों में प्राण डाल देती है। प्रेम भरी आंखों से जब हम इस जगत को देखते हैं तो हर एक चीज में परमात्मा के हस्ताक्षर दिखाई देते हैं। परमात्मा की प्रतिछवि दिखाई देती है।

शोलोदौले कौथा बौल, डाकले ओमनी जाय गो शुना।।

सोलह दल युक्त पद्म यानि विशुद्ध चक्र से निकल रही परम ध्वनि को ध्यान से सुनो। पहले ओंकार की ध्वनि करो, उसके बाद ध्यान से सुनो। वह ध्वनि भीतर निरंतर हो रही है। पहले हम प्रयास करते हैं, फिर हम शांत होकर सुनते हैं और हम पाते हैं कि जो ध्वनि हम कर रहे हैं वह निरंतर भीतर गूंज़ रही है। वहां तक जाना हो जाता है। पहले कंठ से करो उसके बाद श्रवण में डूबो।

गुरुमुखेर पौद्मोबाक्क्यो, हदौये कौरो ना ओइक्यो

गुरूमुख ही सर्वोपरि पद्मवाक्य है, जिसे हृदय से एकाकार कर लो। श्रद्धापूर्वक गुरु के उपदेश को सुनो। गुरु जो कह रहा है, अगर हमे उस पर श्रद्धा नहीं करेंगे; तो यात्रा ही संभव नहीं है। यात्रा श्रद्धा की है। श्रद्धा के द्वार से हम अपने भीतर अंतर्तम में प्रवेश करते हैं। श्रद्धा के द्वार से हम भगवान तक पहुंच जाते हैं। लेकिन गुरु जो विधि कह रहा है, जो बात कह रहा है वही सर्वोपरि है। फिर वहां द्वंद्व नहीं होना चाहिए। वहां निर्द्वंद्वी होना है। गुरु ने जो बोला वह हमारे लिए अल्टीमेट है। तब यह यात्रा संभव हो पाती है। समर्पण का मार्ग ही सर्वोपरि है। सुनो यह प्यारा गीत–

डोरी हाथ तुम्हारे, ओशो मेरे प्यारे।
जीवन सुख है हमने जाना,
अमृत को हमने पहचाना।
दूर हुए दुख सारे, ओशो मेरे प्यारे।
राम नाम का भेद बताया,
ध्यान, समाधि, प्रेम सिखाया।
जागे भाग हमारे, ओशो मेरे प्यारे।
दृश्य न द्रष्टा, दर्शन केवल।
श्रव्य न श्रोता, श्रवण है केवल।
डोंगी लगी किनारे, ओशो मेरे प्यारे।

संत एरफान शाह आगे कहते हैं–

तौबे आत्ता हौबे शुद्धो, पूरबे मोनेरो बाशोना।।

तभी तेरी आत्मा शुद्ध होकर सकल मनोरथ पूर्ण करेगी। षिश्यत्व क्या है? अहंकार से मुक्ति है। जैसे अग्नि धुएं से ढकी हुई है; ऐसे ही हमारी आत्मा अहंकार के खोल से ढकी हुई है। यह अहंकार का खोल कैसे गल जाए? गुरु के चरणों में बैठने से, गुरु के निकट होने से, गुरु के प्रेम में पड़ने से यह अहंकार की खोल गलती है। और जिस दिन यह अहंकार की खोल गल गयी, हमारी षुद्ध आत्मा हमारे समक्ष प्रकट हो जाती है।

चाँद चौकोरे जूगौल खैले, नीरेर शौंगे नूर चौले

जहाँ चाँद–चकोर की नित्य लीला चल रही है; नीर के संग नूर चल रहा है; ऐसे सहस्रार चक्र में जाकर ध्यान लगाओ वहां ऐसी अनुभूति होगी। अध्यात्म क्या है? विपरीत का मिलन है। कैसे दो विपरीत मिलते हैं और अद्वैत घटित होता है– 'नीरेर शौंगे नूर चौले'।

शाहा एरफान बौले लालपौद्दो, पेले भोजले हौबे कॉंचाशोना।।

बाउल संत शाह एरफान कहते हैं– लाल पद्म अर्थात् मूलाधार में न ठहर जाना वरना

कच्चा सोना ही रह जाओगे। बाउल किसी भी चीज की निंदा नहीं करते हैं। परमात्मा ने हमें जो भी दिया है, बाउल उसकी निंदा नहीं करते हैं। वे कहते हैं– कच्चा सोना (अशुद्ध सोना) और शुद्ध सोना। प्रकृति का सम्मान करते हैं। मूलाधार से सहस्रार की ओर यात्रा करनी है। जो मूलाधार में जीता है, उसकी निंदा नहीं कर रहे हैं। काम से राम तक की यात्रा की बात करते हैं। यह जो पहले चक्र से सहस्रार चक्र की यात्रा है, इसमें सुंदर–सुंदर अनुभव होते हैं। लेकिन बाउल फकीर कहते हैं कि हमें कहीं भी नहीं रूकना है, नहीं तो हम कच्चा सोना रह जाएंगे।

मूलाधार पहला चक्र है जो स्थूल शरीर से जुड़ा हुआ है। प्रकृति ने जो हमें कच्चे सोने के रूप में दिया है– काम वासना; लेकिन जब हम साधना करेंगे तो यही ब्रह्मचर्य के रूप में हासिल होगी। स्वाधिश्ठान भाव से जुड़ा हुआ है– भय, घृणा, क्रोध, हिंसा ये प्रकृति से मिले हैं। लेकिन जब हम साधना करेंगे तो ये जो भाव हैं– प्रेम और करूणा के रूप में, शुद्ध सोने के रूप में मिल जाएंगे। मणिपुर चक्र जिसमें कि संदेह और विचार हैं। जब हम साधना से गुजरेंगे तो यही विचार विवेक बन जाएगा। यही संदेह श्रद्धा बन जाएगी फिर श्रद्धा से भक्ति और फिर आत्मानंद की अनुभूति होगी।

अनाहत चक्र से हमारा मनस शरीर जुड़ा हुआ है। कल्पना और स्वप्न हमें प्रकृति ने दिये हैं। लेकिन जब हम साधना करेंगे तो हमें अतीन्द्रिय दर्शन हो जाएंगे और विजन्स् आने लगेंगे तरह–तरह के। विशुद्ध चक्र पर द्वैत नहीं है। आत्म शरीर यहां से जुड़ा हुआ है। जब हम साधना करेंगे, तब हमारे भीतर एक जागृति आएगी और इजनेस की अनुभूति होगी; मैं कौन हूं का बोध होगा। आज्ञा चक्र हमारे ब्रह्म शरीर से जुड़ा हुआ है। जब यहां से यात्रा होगी, जब हमारी ऊर्जा यहां पहुंचेगी तब तथाता का बोध होगा। और अंतिम सहस्रार से निर्वाण काया जुड़ी हुई है। यहां जाकर हमें शून्य अी अनुभूति होगी। अनस्तित्त्व की अनुभूति होगी। यह यात्रा है कच्चे सोने से पक्के सोने तक की। अशुद्ध सोना शुद्ध सोने में बदल जाता है। सोया हुआ गोंविद जागा हुआ हो जाता है।

आइये, अब परमगुरु ओशो को सुनें–

'मूलाधार चक्र की प्राथमिक प्राकृतिक संभावना कामवासना है, जो हमें प्रकृति से मिलती है; वह भौतिक शरीर की केंद्रीय वासना है। अब साधक के सामने पहला ही सवाल यह उठेगा कि यह जो केंद्रीय तत्त्व है उसके भौतिक शरीर का, इसके लिए क्या करे? और इस चक्र की एक दूसरी संभावना है, जो साधना से उपलब्ध होगी, वह ब्रह्मचर्य है। सेक्स इसकी प्राकृतिक संभावना है और ब्रह्मचर्य इसका ट्रांसफार्मेशन है, इसका रूपांतरण है। जितनी मात्रा में चित्त कामवासना से केंद्रित और ग्रसित होगा, उतना ही मूलाधार अपनी अंतिम संभावनाओं को उपलब्ध नहीं कर सकेगा। उसकी अंतिम संभावना ब्रह्मचर्य है। उस चक्र की दो संभावनाएं हैंः एक जो हमें प्रकृति से मिली, और एक जो हमें साधना से मिलेगी।

या तो जो प्रकृति से मिला है हम उसमें जीते रहें, तब जीवन में साधना शुरू नहीं हो पाएगी; दूसरा काम जो संभव है वह यह कि हम इसे रूपांतरित करें। रूपांतरण के पथ पर जो बड़ा खतरा है, वह खतरा यही है कि कहीं हम प्राकृतिक केंद्र से लड़ने न लगें। साधक के मार्ग में खतरा क्या है? या तो जो प्राकृतिक व्यवस्था है वह उसको भोगे, तब वह उठ नहीं पाता उस तक जो चरम संभावना है– जहां तक उठा जा सकता था; भौतिक शरीर जहां तक उसे पहुंचा सकता था वहां तक वह नहीं पहुंच पाता; जहां से शुरू होता है वहीं अटक जाता है। तो एक तो भोग है। दूसरा दमन है, कि उससे लड़े। दमन बाधा है साधक के मार्ग पर– क्योंकि दमन के द्वारा कभी ट्रांसफार्मेशन, रूपांतरण नहीं होता। दमन बाधा है तो फिर साधन क्या होगा? समझ साधन बनेगी। अंडरस्टैंडिंग साधन बनेगी। काम वासना को जो जितना समझ पाएगा, उतना ही उसके भीतर रूपातरंण होने लगेगा। उसका कारण है– प्रकृति के सभी तत्त्व हमारे भीतर मूर्छित हैं। अगर हम उन तत्त्वओं के प्रति होशपूर्ण हो जाएं तो रूपांतरण होना शुरु हो जाएगा। जैसे ही हमारे भीतर कोई चीज जागनी शुरु होती है वैसी ही प्रकृति के तत्त्व बदलने शुरु हो जाते हैं। जागरण कीमिया है। अवेयरनेस कीमिया है उसको बदलने की।

अगर कोई अपने काम–वासना के प्रति पूरे भाव, पूरे चित्त, पूरी समझ से जागे तो उसके भीतर काम–वासना की जगह ब्रह्मचर्य का जन्म शुरु हो जाता है। और जब तक कोई पहले शरीर पर ब्रह्मचर्य तक न पहुंच जाए तब तक दूसरे शरीर की संभावनाओं के साथ कम करना बहुत कठिन है।'

धन्यवाद। हरिं ओम तत्सत्।

सोलहवां प्रवचन

मन तू जोति सरूप है

ओ केउ देखबी जोदी शौहोज मानुष रूपेर घौरे जाओ।
आछे नाहूत, मालकूत, जारुत, लाहुत—चार मोकोगे चाओ।
शौहोज मानुषेर धारा
धारा धोरते हौबे जैन्ते—मौरा पागोल—पारा
ताय धोरते गैले शोरे पौड़े नयोन मूदे रौओ।।
ओ केउ देखबी जोदी शौहोज मानुष रूपेर घौरे जाओ
मानुषेर बाराम द्विदौले
आकोर्षोने हेलेदूले निःशौब्दे चौले
आछे चोतूद्दौले लीला खैला गुरुमुखे लौओ।।
ओरे एरफान आली
हेलाय हेलाय दिन बोये जाय
मौन तोरे बोलि
एबार शौहोज मानुष दीप्तो कोरे शिद्धो होये जाओ।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

बाउल फकीर इरफान शाह की अमृत वाणी है–

किसी को अगर सहज–सरल मानुष देखना है तो मानुष रूप में जो चैतन्य स्वरूप है उसे देखो। मानुष के अंदर हीं नाहूत, मालकूत, जारूत, और लाहुत ये चार मुकाम हैं, जहां चैतन्य आत्मा का बोध होता हैं। मानुष में हीं ये धारा बह रहीं है। इस अमृत–स्वरूप को जानने के लिए पागल होना होता है, नयन मूंद कर, तभीं इसे पकड़ सकते हैं; क्योंकि ये सभीं सहज मानुष में हीं विद्यमान हैं। सहस्रार से मूलाधार का ज्ञान गुरुमुख से ग्रहण करो। इसका आकर्षण इतना है कि निःशब्द में इसकी अनुभूति की जाती है। इरफान शाह कहते हैं कि धीरे–धीरे समय बीतता जा रहा है। अब समय रहते चेत जा। चैतन्य स्वरूप सहज मानुष में हीं यह दीप्ति है जिसे जलाकर सिद्ध हो जा। गुरुमुख होकर हीं वह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

ओ केउ देखबी जोदी शौहोज मानुष रूपेर घौरे जाओ।

किसी को सहज मानुष की अनुभूति करनी है, तो अपने हीं भीतर जाना होगा; अपने स्वरूप के घर में जाना होगा। सहज मानुष को समझने के लिए सहज होना जरूरी है, असहज मानुष क्या इसे जानें? हमारी पर्सनॉलिटी, जिसमें हमारी देह आती है, मन आता है; इसे असहज मानुष कहेंगे। और सहज मानुष बाउल किसे कहते हैं? सहज मानुष कहते हैं हमारी इंडिविजुएलिटी को, आत्मा को, निराकार को।

एक और शब्द है बाउल में– अधर मानुष। जब वे अधर मानुष कहते हैं– उसका अर्थ है परमात्मा। उसका अर्थ है गोविंद। उसका अर्थ है ब्रह्म। असहज मानुष का अर्थ है– पर्सनॉलिटी। पर्सनॉलिटी का अर्थ है– परसोना– नकाब, मुखौटा। जब तक हम इस शरीर में हैं; हमारी चेतना इस शरीर पर टिकी हुई है; हमारा ध्यान इस पर है; हम असहज ही रहेंगे। यहां सहजता संभव नहीं है। सहजता की अनुभूति हमें अपने भीतर श्वास के माध्यम से होती है। श्वास के माध्यम से भीतर जाओ, जहां पर बंद आंखों से हम अपने निराकार को देखेंगे।

आंखें बंद की और बंद आंखों से जो हमें दिखाई दे वह– स्पेस वह निराकार है; इसी को इंडिविजुएलिटी कहते हैं। इसे ही बाउल सहज मानुष कहते हैं। अधर मानुष, असहज मानुष, सहज मानुष– अगर इन तीन शब्दों को हमने समझ लिया, तो जिस ओर हमें बाउल इशारा कर रहे हैं, यह हमें बहुत आसानी से समझ में आ जाएगा।

एक बार की बात है। एक फकीर भिक्षा मांगता था। वर्षों तक एक पेड़ के नीचे भिक्षा मांगता था। लोग वहां आते–जाते पैसा डालते थे। एक दिन उस फकीर की मृत्यु हो गयी। लोगों को बहुत दुख हुआ। लेकिन उन्होंने देखा कि वह फकीर एक चिट्ठी लिखकर छोड़ गया था। उस चिट्ठी में लिखा हुआ था कि मेरे मरने के बाद मेरी इच्छा है कि मेरी कब्र यहीं बनें और

मुझे यहीं दफनाया जाए। लोगों ने उस जगह पर दो इंच गढ्ढा खोदा और देखा कि यहां तो खजाना है। बड़ा खजाना था वहां पर। सबको बहुत दया आयी कि बेचारा भिखारी जिंदगी भर एक-एक दो-दो पैसे मांगता रहा जबकि यह तो खजाने का मालिक था। ऐसे ही हमारी हालत है। हम असहजता में जीते हैं। हम केवल अपनी पर्सनॉलिटी के तल पर जीते हैं; देह के तल पर जीते हैं। हम सम्राट हैं और भिखारी होकर जीते हैं। हम सम्राट हैं शांति के साम्राज्य के; हम सम्राट हैं आनंद के; हम सम्प्रट हैं प्रेम के; लेकिन हम सदा भिखारी की तरह दूसरों से मांगते रहते हैं। हमें प्रेम दो, हमें आनंद दो, बस हमारी नजर सदा दूसरे की ओर रहती है। बाउल कहते हैं- सहज मानुष हो जाओ। कैसे हो जाओ? आंखें बंद करो; उन्होंने सहज मानुष होने के कुछ मुकाम बताएं हैं।

सबसे पहले परमगुरु ओशो की वाणी को सुनेंगे, फिर जो चार मुकाम हैं उनकी चर्चा होगी-

'तू न पृथ्वी है, न जल, न वायु, न आकाश'- ऐसी प्रतीति में अपने को थिर कर। 'मुक्ति के लिए आत्मा को, अपने को इन सबका साक्षी चैतन्य जान। 'साक्षी' सूत्र है। इससे महत्वपूर्ण सूत्र और कोई भी नहीं। देखने वाले बनो! जो हो रहा है उसे होने दो; उसमें बाधा डालने की जरूरत नहीं। यह देह तो जल है, मिट्टी है, अग्नि है, आकाश है। तुम इसके भीतर तो वह दीये हो जिसमें ये सब जल, अग्नि, मिट्टी, आकाश, वायु प्रकाशित हो रहे हैं। तुम द्रष्टा हो। इस बात को गहन करो।

साक्षिणां चिद्रूपं आत्मानं विद्दि...

यह इस जगत में सर्वाधिक बहुमूल्य सूत्र है। इसी से होगा ज्ञान! इसी से होगा वैराग्य! इसी से होगी मुक्ति! यदि तू देह को अपने से अलग कर और चैतन्य में विश्राम कर स्थित है तो तू अभी ही सुखी, शांत और बंध-मुक्त हो जायेगा।'

इसलिए मैं कहता हूं, यह जड़-मूल से क्रांति है। पतंजलि इतनी हिम्मत से नहीं कहते कि 'अभी ही।' पतंजलि कहते हैं, 'करो अभ्यास- यम, नियम, साधो- प्राणायाम, प्रत्याहार, आसन; जन्म-जन्म लगेंगे, तब सिद्धि है।' महावीर कहते हैं, 'पंच महाव्रत! और तब जन्म-जन्म लगेंगे, तब कटेगा जाल कर्मों का। सुनो अष्टावक्र कोः

यदि देहं पृथक्कृत्य चिति विश्राम्य तिष्ठ सि।
अधुनैव सुखी शांतः बंधमुक्तो भविष्यसि।।

अभी, यहीं, इसी क्षण! 'यदि तू देह को अपने से अलग कर और चैतन्य में विश्राम कर स्थित है...!' अगर तूने एक बात देखनी शुरू कर दी कि यह देह मैं नहीं हूं; मैं कर्ता और भोक्ता नहीं हूं; यह जो देखने वाला मेरे भीतर छिपा है जो सब देखता है- बचपन था कभी तो बचपन देखा, फिर जवानी आयी तो जवानी देखी, फिर बुढ़ापा आया तो बुढ़ापा देखा; बचपन नहीं रहा तो मैं बचपन तो नहीं हो सकता- आया और गया; मैं तो हूं! जवानी नहीं रही तो मैं जवानी तो नहीं हो सकता- आई और गई; मैं तो हूं! बुढ़ापा आया, जा रहा है, तो

मैं बुढ़ापा नहीं हो सकता। क्योंकि जो आता है, जाता है, वह मैं कैसे हो सकता हूं! मैं तो सदा हूं, जिस पर बचपन आया, जिस पर जवानी आई, जिस पर बुढ़ापा आया, जिस पर हजार चीजें आईं और गईं– मैं वही शाश्वत हूं।

देह स्टेशनों की तरह बदलती रहती है– बचपन, जवानी, बुढ़ापा, यात्री चलता जाता है। तुम स्टेशन के साथ अपने को एक तो नहीं समझ लेते? पूना के स्टेशन पर तुम ऐसा तो नहीं समझ लेते कि मैं पूना हूं। फिर पहुंचे मलाड़। कहीं ऐसा तो नहीं समझ लेते कि मैं मलाड़ हूं। तुम जानते हो कि पूना आया और गया। तुम तो यात्री हो, तुम तो द्रष्टा हो, जिसने पूना देखा। जिसने मलाड़ देखो। मलाड़ आया। तुम तो देखने वाले हो। तो पहली बात जो हो रहा है, उसमें से देखने वाले को अलग कर लो। देह से अपने को अलग कर और चैतन्य में विश्राम कर।'

आछे नाहूत, मालकूत, जारुत, लाहुत–चार मोकोगे चाओ।

आत्मा का बोध चार जगह से होता है। पहला–नाहूत। नाहूत का अर्थ है–निराकार। बंद आंखों से जो हम स्पेस देखते हैं, शून्य देखते हैं, यह जो कोरा पर्दा दिखाई देता है, इसे बाउल नाहूत कहते हैं। झेन फकीर कहते हैं– फाइंड आउट योर ओरिजनल फेस। अपना वास्तिविक चेहरा जो जन्म के पहले भी था और जन्म के बाद भी है और मृत्यु के बाद भी रहेगा। वह वास्तविक चेहरा पहचानो। इसे बाउल कहते हैं– नाहुत और सूफी कहते हैं– लाहूत।

दूसरा मुकाम है– मालकूत। जिसे ओंकार कहें, नाम कहें। जब इस निराकार में हम थिर हो जाते हैं; इस निराकार में जब हम लीन हो जाते हैं; तो अचानक हम पाते हैं कि एक गूंज सुनाई दे रही है। ऐसी गूंज जिसको झेन फकीर कहते हैं– दि साउंड ऑफ वन हैंड क्लैपिंग। एक हाथ की ताली का पता लगाओ कि कौन–सी वह आवाज है? जो एक हाथ की ताली है। जब हम अपने भीतर निराकार में लीन होते हैं तो हमारे भीतर वह गूंज सुनाई देती है।

तीसरा मुकाम है जारूत। सूफी इसे जबरूत, दशम द्वार कहते हैं। कोई शिवनेत्र कहता है। यह प्रवेश द्वार है; समझो कि किसी महल में प्रवेश करना है तो यह दरवाजा है। जब तक हमारी ऊर्जा सिकुड़कर, सिमटकर इस बिन्दु पर नहीं आती, तब भीतर प्रवेश करना संभव नहीं है। कैसे हम कछुए जैसे हो जाएं? सारी इंद्रियों को सिकोड़कर, सारी ऊर्जा को सिकोड़कर इस शिवनेत्र पर ले आएं। और यहां से जब यह खुलता है तब भीतर प्रवेश होता है, जहां परमात्मा विराजमान है।

चौथा मुकाम है लाहुत। संत इसे सुन्नलोक, भंवरगुफा कहते हैं। दशमद्वार से इसमें

प्रवेश हुआ। यहां आत्मा, चैतन्य की अनुभूति हुई; मैं कौन हूं का बोध हुआ। अपना वास्तविक रूप का दर्शन हो गया।

शौहोज मानुषेर धारा
धारा धोरते हौबे जैन्ते–मौरा पागोल–पारा
ताय धोरते गैले शोरे पौड़े नयोन मूदे रौओ।।

मानुष में ही यह धारा बह रही है। अगर इसकी अनुभूति करनी होगी तो हमें पागल होना होगा। संसार में भी हमें कुछ चाहिए; कुछ हासिल करना है तो एक दिवानगी चाहिए। जो दीवाने होते हैं उन्हें ही कुछ हासिल होता है। सारी ऊर्जा एक तरफ होती है। वैज्ञानिक भी एक तरह के दीवाने होते हैं। सारा ध्यान एक तरफ रहता है। ठीक ऐसे ही अध्यात्म में अगर परमात्मा को पाना है, अपने चैतन्य की अनुभूति करनी है तो दिवानगी चाहिए।

अक्ल के भटकों को राह दिखलाते हुए
उम्र काटी हमने दिवाना कहलाते हुए।

कबीर साहब कहते हैं–

मेरे बाबा मै बउरा, सभ खलक सैआनी मैं बउरा।
मैं बिगरिओ बिगरै मति अउरा
आपि न बउरा राम कीओ बउरा।
सतिगुरु जारि गइओ भ्रमु मोरा

कबीर कहते हैं– मैं तो पागल हूं अब तुम लोग बच जाना। व्यंग करते हैं कि सारी भीड़ सयानी है लेकिन मैं पागल हूं। मैं तो बिगड़ गया लेकिन तुम बच के रहना। लेकिन फिर कहते हैं मैं अपने आप नहीं बिगड़ा। मुझे सद्‌गुरु ने दिवानगी दी। सद्‌गुरु ने मेरा सारा भ्रम तोड़ दिया बाहर का। फिर ऐसी दीवानगी आयी कि परमात्मा के बिना अब जी ही नहीं सकता। और उस भीतर की दीवानगी में जीता है।

मानुषेर बाराम द्विदौले
आकोर्षोने हेलेदूले निःशौब्दे चौले
आछे चोतूदौले लीला खैला गुरुमुखे लौओ।।

आंतरिक अनुभूतियां मौन में होती हैं। बाहर का कोलाहल, बाहर की चकाचौंध हमारी आत्मा को, हमारी ऊर्जा को खींचती है। ऐसे ही भीतर जब हम जाते हैं; तो भीतर शांति है। उस अद्भुत शांति में, उस गहन सन्नाटे में इतना आकर्षण है, इतना चुम्बकीय तत्त्व है जो हमें अपनी ओर खींचता है। पहले हमें प्रयास करना पड़ता है, बाहर से टूटने का। संसार में जाने में कोई प्रयास नहीं करना पड़ता, वह तो प्रकृति से ही मिला है। बाहर कोलाहल खींचेगा, चकाचौंध खींचेगी। लेकिन जब आप प्रतिक्रमण करते हैं; भीतर का मौन हमें अपनी ओर

खींचता है। हमें एक कदम चलना है बस। थोड़ा आंख बंद करो, अपने भीतर आना शुरु करो; कुछ शुरुआत हमने की; अब हम पाते हैं कि भीतर का आर्कषण ऐसा है, उस सन्नाटे का आकर्षण ऐसा है कि हमारी सारी ऊर्जा अब खिंचती चली जाती है। और हम उस भंवरलोक में, उस सुन्नगुफा में प्रवेश कर जाते हैं। यह ज्ञान गुरुमुख होने से ही मिलता है। गुरुमुख होना यानि गुरु के प्रति रिसेप्टिव होना होगा। जब तक हम रिसेप्टिव नहीं होंगे तब तक हमारी यात्रा संभव ही नहीं है। रिसेप्टिव होना, जागरुक होना।

ओरे एरफान आली
हेलाय हेलाय दिन बोये जाय
मौन तोरे बोलि
एबार शौहोज मानुष दीप्तो कोरे शिद्धो होये जाओ।।

इरफान शाह कहते हैं– धीरे–धीरे समय बीतता जा रहा है।

'जाग प्यारे मौज–मस्ती है मनाती जिन्दगी।
इस फना के बाग को कुछ पल सजाती जिन्दगी।
मुक्त हो जा मृत्यु से तू राम रस का पान कर।
क्या पता किस वक्त कब खो जाए प्यारी जिन्दगी? '

इरफान शाह कहते हैं– सहज मानुष में ही वह दीप्ती है, उसे जलाओ और सिद्ध हो जाओ। कौन सी दीप्ती की बात कर रहे हैं इरफान शाह? उस दीप्ती की बात कर रहे हैं, जिसके लिए पलटू साहब कहते हैं–

दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार।
पलटू अंधियारी मिटी, बाती दीन्ही बार।

उस बाती को जलाना नहीं पड़ता। वह अगम का दीया जल ही रहा है।

'दीया जले अगम का, बिन बाती बिन तेल।'

बिना तेल के, बिना बाती के निरंतर जब हम भीतर जाते हैं तो प्रकाश ही प्रकाश मौजूद है। वहां ज्योति सदा मौजूद है। हमारे भीतर मुड़ने की देर है और हम पाते हैं हमारी सारी ऊर्जा बाहर से सिमटकर हम पर लौट आयी और हमारी ही ऊर्जा हम पर प्रकाश बनकर बरस पड़ती है।

मन तूं जोति सरूप है आपणा मूलु पछाणु।
मन हरि जी तेरै नालि है गुरमती रंगु माणु।

अपना मूल पहचानना है तो उस ज्योति को जानना होगा।

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

सतरहवां प्रवचन

सारा जीवन ही रासलीला है

कोन कृष्णो हौय जौगोतपोति
मोथूरार कृष्णो नौय शे, शे कृष्णो हौय शौबार गोति।।
जींबदेहे शुक्रोरूपे, ए ब्रोम्हाण्डो आछे ब्यापे
कृष्णो तारे कौय पुरूष शेई हौय शेई राधार गोति।।
कृष्णो बोस्तु निगुम धौरे, जींबदेहे बिराज कौरे
रोशिकेर कौरोन, शे कृष्णो धारोन कौरोन गोम्भीर ओति।।
आत्तो तौत्तो जाने जे जौन, कृष्णो–शेतु चेने शे जौन
लालोन साँईर बानी रोशिक धोनी बौले दृढ्र प्रोति।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

बाउल फकीर दद्दू शाह कहते हैं–

कौन से कृष्ण को जगत्पति कहते हो? वो मथुरा के कृष्ण, नहीं, जिसे तुम जगत्पति कह रहे हो; मैं तो उस कृष्ण को जानता हूँ जो सबकी गति है और सबमें विराज रहे हैं। जीवदेह में वो कृष्ण शुक्ररूप में विद्यमान हैं। इस ब्रह्माण्ड में व्याप्त वही कृष्ण मात्र पुरूष है, जो राधा की गति हैं। वह कृष्ण रूपी वस्तु निर्गुण, निराकार घर में है। जीवदेह में विराज रहे हैं। रसिक जन इसी कृष्ण को धारण करने की बात कहते हैं। जो जन आत्मतत्त्व को जानता है, उसी का कृष्ण से सेतु बनता है। दद्दू शाह कहते हैं कि मेरे गुरू लालन की भी यही बानी है।

कोन कृष्णो हौय जौगोतपोति

मोथूरार कृष्णो नौय शे, शे कृष्णो हौय शौबार गोति।।

सामान्य जन परमात्मा को आकार रूप में मानते हैं। ज्ञानी जन परमात्मा को निराकार रूप में जानते हैं। सामान्य जन परमात्मा को अवतार रूप में मानते हैं। ज्ञानी जन परमात्मा को ओंकार रूप में जानते हैं। सामान्य जन रूप की पूजा करते हैं; और ज्ञानी जन उस अरूप को जानते हैं, उस अरूप का अनुभव करते हैं जो हर रूप में विद्यमान है। कृष्ण का अर्थ है जो आकर्षित करे; आकर्षण शक्ति को प्रेम से दिया गया नाम है यह। जैसे यह पृथ्वी गुरुत्वाकर्षण की शक्ति पर टिकी हुई है। न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के नियम खोजे। जिस शक्ति के कारण यह पृथ्वी टिकी हुई है; आधार है गुरुत्वाकर्षण।

कृष्ण का अर्थ होता है– जो आकृष्ट करे, आकर्षित करे। सेंटर ऑफ ग्रेविटेशन– कशिश का केंद्र। जिस पर सारी चीजें खिंचती हैं। चुंबक देखा होगा आपने कैसे वह सब चीजों को अपनी ओर खींचता है। ऐसे ही सारी चीजें हमारी आत्मा की ओर खिंचती हैं। प्रत्येक व्यक्ति का जन्म एक अर्थ में कृष्ण का ही जन्म है। क्योंकि उसकी आत्मा चुंबक है। उसकी आत्मा कशिश का केंद्र है, जिसके कारण सारी परिस्थितियां खिंचती हुई चली आती हैं। उस चुंबक के कारण, उस आत्मारूपी चुंबक के कारण शरीर धारण होता है। और उसके आस–पास सारे लोग आते हैं; सारी परिस्थितियां निर्मित होतीं हैं।

जीबदेहे शुक्रोरूपे, ए ब्रोम्हाण्डो आछे ब्यापे।

कृष्णो तारे कौय पुरूष शेई हौय शेई राधार गोति।।

जीवरूप में वो कृष्ण शुक्ररूप में विद्यमान है।

ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। कृष्ण एक मात्र पुरूष हैं,

जो राधा की गति है। अस्तित्त्व का गहनतम प्रतीक जो है वह रासलीला है। परमाणु से लेकर पूरे ब्रह्माण्ड में एक नृत्य हीं चल रहा है। चांद, तारे, सूरज, पृथ्वीं ये सब नृत्य में हीं संलग्न हैं। पृथ्वीं सूर्य का चक्कर लगा रहीं है, नृत्य कर रहीं है। चांद पृथ्वीं का चक्कर लगा रहा है, नृत्य हो रहा है। कोयल नाच रहीं है, मोर फ्रुल्लित हैं, फूल खिल रहे हैं, सारी प्रकृति में जो उत्सव चल रहा है यहीं रासलीला है। सब ओर एक नृत्य चल रहा है। लेकिन कारण क्या है? जीव रूप में, वह शुक्ररूप में विराजमान है। सारा जीवन विरोधि शक्तियों का मिलन है।

जीवन का सारा सुख जब विरोधि शक्तियां मिलती हैं; धन और ऋण अब आपस में मिलते हैं तब एक आनंद की उत्पत्ति होतीं है। सारा आनंद का रहस्य विरोधि तत्त्व के मिलन में छिपा हुआ है। इसलिए वह कृष्ण जो राधा की गति है उसकी बात लालन शाह करते हैं। अगर हम चारों तरफ देखें, आंखें उठाएं तो क्या पाएंगे? आकाश में दौड़ते हुए बादल, चहचहाते हुए पक्षी, खिलते हुए फूल; सुगंधें बिखरतीं हुई। ये क्या हैं? यह एक रासलीला ही चल रहीं है।

विद्युत आपस में आकर्षित होतीं है या स्त्री पुरुष आपस में आकर्षित होते हैं। परमात्मा अर्धनारीश्वर है, वह स्त्री भी है और वह पुरुष भी है। इसलिए जो स्त्री–पुरुष आपस में आकर्षित हो रहे हैं उनकी एक ब्रह्मरूप होने की चाहत है कि उस अनुभूति में कैसे हम पहुंच जाएं। जब तक आकर्षण ऐसा ही चलता रहेगा। लेकिन बाहर की बात नहीं कह रहे हैं लालन, हमारे भीतर राधा मौजूद है; भीतर कृष्ण शक्ति मौजूद है, इन दोनों के मिलन की बात कर रहे हैं। जब भीतर इन दोनों का मिलन होगा, तब आध्यात्मिक आनंद की, दिव्यानंद की, ब्रह्मानंद की अनुभूति होगी।

कृष्णो बोस्तु निगुम धौरे, जीबदेहे बिराज कौरे

वह कृष्ण रूपी निर्गुण, निराकार घर में है। जीव देह में विराज रहे हैं। उस कृष्णरूपी ऊर्जा को हमें अपने भीतर खोजना होगा।

'गिरवन काहे खोजन जाई, घट अभियंतर खोजो भाई।'

अपने भीतर में, उस कंटेनर में जहां कंटेंट मौजूद है; उस रूप में जहां पर अरूप में मौजूद है; उस रूप में प्रवेश करना पड़ेगा। किसी ने भी परमात्मा की अनुभूति बाहर नहीं की है। सबसे पहले उसने अपने भीतर जाकर, अपने आत्मतत्त्व में जाकर परमात्मा की अनुभूति की है, उसके बाद उसे सर्वत्र परमात्मा अनुभव में आया है।

सभै घट रामु बोलै रामा बोलै। राम बिना को बोलै रे।
एकल माटी कुंजर चींटी भाजन हैं बहुनाना रे।
अस्थावर जंगम कीट पतंगम घटि घटि रामु समाना रे।
एकल चिंता राखु अनंता अउर तजहु सभ आसा रे।
प्रणवै नामा भए निहकामा को ठाकरु को दासा रे।

सब घट के भीतर है, वहीं एक निराकार गूंज रहा, वहीं राम बोल रहा है। चाहे हाथी हो, चाहे चींटी हो सबके भीतर वही है। कुछ ऐसा कह लो कि एक कुम्हार ने अलग–अलग प्रकार के बर्तन बनाए हैं, लेकिन सबके भीतर वहीं मिट्टी है। उसी मिट्टी के अनेक–अनेक भांजन बन गए हैं।

प्रणवै नामा भए निहकामा को ठाकरु को दासा रे

नामदेव कहते हैं– जब हम निहकाम हो गए तो हमने पाया कि वहीं ठाकुर और वही दास। सारे भेद गिर गये।

रोशिकेर कौरोन, शे कृष्णो धारोन कौरोन गोम्भीर ओति।।

रसिक जन इसी कृष्ण को धारण करने की बात कहते हैं। रसिक जन यानि प्रभु के प्रेमी। ये तन–मन के खिलाफ नहीं हैं। हमारे जीवन में विपरीत का आकर्षण होता है। सारा जीवन इस विपरीत के आकर्षण से चलता है। लेकिन याद रखना, अध्यात्म में भी लोग वही करते हैं; और इसीलिए इतनी असफलता मिलती है भीतर जाने में। अध्यात्म में भी हम विपरीत को चुनते हैं। अध्यात्म विपरीत की यात्रा नहीं है। कोई पुरुष चित्त है तो वह स्त्रैण चित्त के लोगों को पसंद करेगा। कोई स्त्रैण चित्त है तो वह पुरुष चित्त के लोगों को पसंद करेगा। कोई समर्पण करता है तो उसे भक्ति मार्ग आकर्षित करेगा। कोई संकल्प वाला है तो उसे ज्ञान मार्ग आकर्षित करेगा। इसीलिए इतनी असफलताएं और इतनी परेशानियां हैं अध्यात्म में।

अध्यात्म क्या है? अध्यात्म है स्वभाव की यात्रा। अध्यात्म में उसको पाना नहीं है

जो आकर्षक लगता है। याद रखना, जो चीज अध्यात्म में हमें आकर्षित कर रही है; थोड़ा सा ख्याल करना वह वह हमारा मार्ग नहीं है। जो आकर्षित नहीं कर रहा वह हमारा मार्ग है। अध्यात्म में उसको पाना है जो 'मैं' हूं। लेकिन संसार क्या होता है? संसार में जो मैं नहीं हूं वहीं हम पाना चाहते हैं। अध्यात्म से उल्टा है। अध्यात्म जो मैं हूं उसी में हमें जाना है। अपने स्वभाव को पाना है।

आत्तो तौत्तो जाने जे जौन, कृष्णो– शेतु चेने शे जौन

आत्मतत्त्व को जानकर कृष्ण से सेतु बना। आत्मा में जाना होगा। श्वास के माध्यम से भीतर आए और श्वास के माध्यम से अपने निराकार में प्रवेश किया; निराकार में जब हम प्रवेश करते हैं तो वहां अपनी आत्मा की अनुभूति होगी। और जिस दिन हमें ओंकार स्वरूप, प्रकाश स्वरूप आत्मा की अनुभूति हो गयी, उस दिन हम पाएंगे कि हम परमात्मा में ही हैं। हम ही परमात्मा हैं। ऐसा सेतु बना कि भेद ही खत्म हो गया। भक्त भगवान बन जाता है। राधा और कृष्ण का भेद मिट जाता है।

लालोन साँईर बानी रोशिक धोनी बौले दूद्दू प्रोति।।

दद्दू शाह कहते हैं कि मेरे गुरू लालन की भी यही बानी है। 'सबै सयाने एक मत' जैसे विज्ञान एक है, वैसे ही वास्तविक धर्म भी एक ही है। जो भी अपने भीतर जाएगा, जो भी अपने आत्मतत्त्व में जाएगा लौटकर वह जो बोलेगा वह एक ही होगा; उसमें कोई भी भेद नहीं; वहां सब कुछ अभेद है। और जहां भेद है, वहां धर्म के नाम पर कुछ और चलता होगा।

आइए, इस महारास के विषय में परमगुरु ओशो को सुनते हैं–

'रास को समझने के लिए पहली जरूरत तो यह समझना है कि सारा जीवन ही रास है। सारा जीवन विरोधी शक्तियों का सम्मिलन है। और जीवन का सारा आनंद और रहस्य विरोधी के मिलन में छिपा है। तो पहले तो रास का जो 'मेटाफिजिकल' जो जागतिक अर्थ है, वह समझ लेना उचित है; फिर कृष्ण के जीवन में उसकी अनुछाया है, वह समझनी चाहिए। चारों तरफ आंखें उठाएं तो रास के अतिरिक्त और क्या हो रहा है? आकाश में दौड़ते हुए बादल हों, सागर की तरफ दौड़ती हुई सरिताएं हों, बीज फूलों की यात्रा कर रहे हों, या भंवरे गीत गाते हों, या पक्षी चहचहाते हों, या मनुष्य प्रेम करता हो, या ऋण और धन विद्युत आपस में आकर्षित होती हों, या स्त्री और पुरुष की निरंतर

लीला और प्रेम की कथा चलती हो, इस पूरे फैले हुए विराट को अगर हम देखें तो रास के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो रहा है।

रास बहुत 'कॉस्मिक' अर्थ रखता है। इसके बड़े विराट जागतिक अर्थ हैं। पहला तो यही कि इस जगत के विनियोग में, इसके निर्माण में, इसके सृजन में जो मूल आधार है, वह विरोधी शक्तियों के मिलन का आधार है। एक द्वार हम बनाते हैं, तो द्वार में उल्टी ईटें लगाकर 'आर्च' बन जाता है। एक–दूसरे के खिलाफ लगी ईटें पूरे भवन को सम्हाल लेतीं हैं। हम चाहें तो एक–सी ईटें लगा सकते हैं। तब द्वार नहीं बनेगा, और भवन तो उठेगा नहीं। शक्ति जब दो हिस्सों में विभाजित हो जाती है, तो खेल शुरू हो जाता है। शक्ति का दो हिस्सों में विभाजित हो जाना ही जीवन की समस्त पर्तों पर, समस्त पहलुओं पर खेल की शुरुआत है। शक्ति एक हो जाती है, खेल बंद हो जाता है। शक्ति एक हो जाती है तो प्रलय हो जाती है। शक्ति दो में बंट जाती है तो सृजन हो जाता है।

रास का जो अर्थ है, सृष्टि की जो धारा है, उस धारा का ही गहरे–से–गहरा सूचक है। जीवन दो विरोधियों के बीच खेल है। ये विरोधी लड़ भी सकते हैं, तब युद्ध हो जाता है। ये दो विरोधी मिल भी सकते हैं, प्रेम हो जाता है। लेकिन लड़ना हो कि मिलना हो, दो की अनिवार्यता है। सृजन दो के बिना मुश्किल है। कृष्ण के रास का क्या अर्थ होगा इस संदर्भ में–कृष्ण का गोपियों के साथ नाचना साधारण नृत्य नहीं है। कृष्ण का गोपियों के साथ नाचना उस विराट रास का छोटा–सा नाटक है, उस विराट का एक आण्विक प्रतिबिंब है। वह जो समस्त में चल रहा है नृत्य, उसकी एक बहुत छोटी–सी झलक है। इस झलक के कारण ही यह संभव हो पाया कि उस रास का कोई कामुक अर्थ नहीं रह गया। उस रास का कोई 'सेक्सुअल मीनिंग' नहीं है।'

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

अठारहवां प्रवचन

मोको कहां ढूंढे रे बंदे

ना जानि कैमोन रूप शे
नामेर शोउरौभे जार
त्रिभुबौन मोहित कोरेछे।।

देखते मोने हौय बाशोना
पाइने तार उपाशौना
कोथाम बाड़ी कोथाय ठिकाना,
खूँजिये पाबो कोन देशे।।

आकार कि शाकार भाबिबो,
निराकार कि ज्योतिरूप,
ए कोथा कारे शुधाबो,
सृष्टि कोरलेन को थाय बोशे।।

उपोदेशे गोल जोंदि रौय
कि भाबिये कि कोरे जाय
गोले होरी बोल्ले कि हौय
लालोन भेबे पाय ना दिशे।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

बाउल फकीर लालन शाह के गीत के भाव हैं–मैं ना जानूं किस स्वरूप में हैं वो? जिनके नाम की सुरभि से पूरा त्रिभुवन मोहित हो जाता है। वह किस रूप में है? यह मन में प्रश्न है।

एक कहानी है– एक सुनार राम का परम भक्त था। लेकिन वह राम के सिवाय किसी का आदर नहीं करता था। किसी और पर श्रद्धा नहीं करता था; पूजा की तो बात दूर थी। वह तो किसी और मूर्ति की ओर देखता भी नहीं था।

एक बार राजा ने उसके पास खबर भेजी कि उनके पास एक कृष्ण की मूर्ति है और उसका मुकुट बनाना है। राजा की आज्ञा टाली नहीं जा सकती थी, उसे जाना पड़ा। वह मूर्ति का नाप लेने गया। जब मुकुट का नाप लेना था, तब उसने अपने आंखों पर पट्टी बांध ली क्योंकि वह कृष्ण की मूर्ति को तो देख ही नहीं सकता था। आंखों पर पट्टी बांधकर वह अंदाज से नाप ले रहा था। जब वह आंखों पर पट्टी बांधकर नाप ले रहा था, चेहरे को फील कर रहा था; तब उसने देखा कि उसको वैसा ही महसूस हो रहा है जैसे कि वो राम की मूर्ति है। उसे कृष्ण की मूर्ति नहीं बल्कि उसे राम की ही मूर्ति का अहसास हो गया। उसे वही फीलिंग आ गयी जैसे वह राम की मूर्ति के करीब है।

उसने अचानक घबराहट में पट्टी खोली तो देखा कि राम सामने खड़े हैं। उसको राम के दर्शन हो जाते हैं। और यह पट्टी बाहर की ही नहीं खुली उसके भीतर की पट्टी खुल गयी। उसके धारणाओं की पट्टी खुल गयी। उसकी 'मै' की पट्टी खुल गयी। इस पट्टी के खुलते ही उसने देखा कि सब रूपों में वही है। सब रूपों में एक रूप तभी हो सकता है जब वह अरूप हो। वह अरूप सब रूपों में है।

परमात्मा अरूप है। परमात्मा निराकार स्वरूप है। परमात्मा एक अनुभव है जो पूरे प्राणों पर फैल जाता है; जो रोम–रोम में छा जाता है, ऐसा है परमात्मा। एक अनुभूति है, व्यक्ति नहीं। और हम क्या सोचते हैं? हम परमात्मा को व्यक्ति की तरह खोजते हैं और इसलिए सारे भ्रम खड़े होते हैं। जैसे प्रेम की अनुभूति होती है, ऐसे ही परमात्मा की अनुभूति होती है। प्रेम का साक्षात्कार नहीं होता, प्रेम कोइ व्यक्ति नहीं है जिसको आप नमस्ते कह दो; हैलो कह दो; नहीं, व्यक्ति नहीं होते हुए भी आप उसे महसूस कर सकते हो। देख नहीं सकते हो। प्रेम का साक्षात्कार इसीलिए नहीं होता क्योंकि प्रेम का आर्विभाव होता है। ऐसे ही परमात्मा की अनुभूति होती है। कैसे होगी वह अनुभूति? जिसे परमात्मा के एक बार दर्शन हो गए उसे खिले हुए फूल में, उस खिलावट में उसकी अनुभूति होगी। उगते हुए सूरज में उसकी अनुभूति होगी। पक्षियों की आवाज में परमात्मा की वाणी सुनाई देगी। फूलों की सुगंध में परमात्मा की सुगंध मिलेगी। चारों तरफ एक अपूर्व ऊर्जा का बोध होगा। अपूर्व शक्ति का, छिपी हुई ऊर्जा का बोध होगा।

देखते मोनिहै बासुना पाईने तार उपसुना
कौथै बाड़ी, कोथै ठिकाना खोंजिबे पाबौ कौन दिशै

उसे एक बार मैं देखूं यही मेरे मन की कामना है। उसकी उपासना कैसे करूं? यह मैं समझ ना पाऊं। कहां उसका घर है? कहां उसका ठिकाना है? वह किस देश का वासी है? उसे कहां खोजने जाऊं यह बात मेरे समझ में नहीं आ रही है। मन में जब प्यास जगती है तो प्रभु की अनुभूति क्यों नहीं होती? प्रभु के दर्शन क्यों नहीं होते? कहां उसका ठिकाना है पता ही नहीं चलता।

उसका ठिकाना पता नहीं चल सकता क्योंकि वह सर्वत्र है तो उसका ठिकाना कैसे हो सकता है। वह सब जगह है तो उसका खास घर कैसे हो सकता है। लेकिन हमें अनुभूति क्यों नहीं होती? हमें दर्शन क्यों नहीं होते? हमारी आंखों में 'मै' की पट्टी बंधी है। धारणाओं की पट्टी बंधी है। ज्ञान की पट्टी बंधी है। एक ही अवरोध है हमारे और प्रभु के बीच में और वह अवरोध है– 'मैं'। मैं का ताला लगा हुआ है। यह ताला जिस दिन खुल जाए, हम पाएंगे कि परमात्मा तो माजूद ही है। इस 'मैं' के हर्डल को पार करना है। कैसे होंगे इससे पार?

एक कहानी है– एक साधु और उसका एक मित्र हैं, वे एक ही जंगल में रहते हैं, रात हो गयी है। मित्र ने सोचा कि अपने साधु मित्र के घर चलता हूं। एक खिड़की खुली दिखाई देती और उस खिड़की से प्रकाश भी दिखाई देता है। वह साधु अपने मित्र को पुकारता है, दरवाजा खटखटाता है। अंदर से आवाज आती है– कौन है? तो इसने नाम नहीं बताया, यह सोचता है कि मेरी आवाज से तो पता चल जाएगा और मेरा मित्र है। कहता है, मैं हूं दरवाजा खोला; भीतर से कोई आवाज ही नहीं आयी। ऐसा मौन छा गया, ऐसा निर्जन हो गया वह घर जैसे कोई है ही नहीं। अब कोई आवाज नहीं; वह खटखटाता रहा, पुकारता रहा। कुछ देर बाद एक आवाज आयी–यह कौन मूर्ख है जो अपने आप को मैं कहता है? मैं कहने का अधिकार केवल परमात्मा को है। और फिर वहां सन्नाटा छा गया। वह दरवाजा कभी नहीं खुला। जब तक 'मैं' का ताला है, मैं का अवरोध है, परमात्मा का द्वार कभी भी नहीं खुलता।

कबीर साहब कहते हैं–

'ज्ञानी भूले ज्ञान कथि, निकट रह्यो निज रूप।
बाहर खोजैं बापुरे, भीतर वस्तु अनूप।।'

ज्ञानी कैसे भूल गया परमात्मा को? खोजते–खोजते कैसे भूल रहा है, खोज तो रहा है– 'ज्ञान की भूल–भुलैया में भूल गये हैं ज्ञानी'। परमात्मा निकट से भी निकट है, खोज रहे हैं बाहर तो मिले कैसे?

बाहर खोजैं बापुरे, भीतर वस्तु अनूप।

जहां है नहीं वहां खोज रहे हो तो कैसे मिलेगा? भीतर खोजो।

मोको कहां ढूढ़े रे बंदे मैं तो तेरे पास में।

स्वयं के भीतर निर्विचार में जाना होगा, मौन में जाना होगा, विचारों के पार, मन के पार, अपने भीतर बीइंग में आना होगा। जिसके लिए ज्ञान काम नहीं आता। बौद्धिक समझ काम नहीं देती। क्योंकि बुद्धि से भी परे है परमात्मा– बुद्धि के पार।

जो मुझमें है वहीं तुझमें है, फिर चेतन क्यूं भरमाया?
तन के चोले ने मन में, इन शंकाओं को उपजाया।
सबके अंदर सत्य स्वरूप, वह तो केवल एक ही है
रंग नहीं है, रूप नहीं है, न उसकी कोई रेख भी है।
निराकार, निस्सीम, अरूप वह प्राणशक्ति तो एक ही है
सब अभिनय करते भिन्न–भिन्न पर रंगमंच तो एक ही है।
तन–मन तो मुखौटे जैसे हैं, इनके भीतर है छिपा कौन?
संवादों के कोलाहल में, सुनो तो.... बोल रहा है मौन!

जब हम मौन में बैठते हैं, निर्विचार हो जाते हैं; अपने भीतर आते हैं; अपने अंतर्तम में ठहरते हैं, तो वह मौन बोलता है, वह शांति बोलती है। उस मौन से, उस शांति से परमात्मा की धीमी से पुकार सुनाई देती है।

सहजो कहती है–

नाम नहीं औ नाम सब, रूप नहीं सब रूप।
सहजो सब कुछ ब्रह्म है, हरि परगट हरि गूप।।

नाम नहीं है लेकिन सभी नाम उसी के हैं। रूप नहीं और हर रूप उसी का है। सहजो कहती है कि सब कुछ ब्रह्म है। जब हम निर्मल आंखों से इस जगत को देखते हैं तो यह जगत ही ब्रह्म है। और यह देखने की कला तो आ जानी चाहिए। यह देखने की कला अपने भीतर जाने से, अपने भीतर स्वयं को देखने से यह कला आती है। फिर उस निर्मल आंखों से जब हम बाहर देखते हैं तो सब कुछ ब्रह्म दिखाई देता है। जिनको समझ आ गयी, जिनको अनुभूति हो गयी है; उनके लिए सारा जगत प्रकट रूप से ब्रह्म है। हमारी क्या भूल है? हम परमात्मा को व्यक्ति समझ लेते हैं। हम सोचते हैं कि परमात्मा किसी व्यक्ति के रूप में है और यही भूल है। इसीलिए प्रभु अप्रगट है हमारे लिए। इसीलिए यह जगत हमारे लिए संसार है। इसीलिए यह जगत हमारे लिए माया है। अंग्रेजी का एक शब्द है– होली जिसका अर्थ होता है– पवित्र। लेकिन होली शब्द कैसे बना? होली शब्द बना है होल से। होल का मतलब होता है समस्त, सारा। यह जो सब कुछ है, इसको अगर एक नाम देना चाहें तो वह है परमात्मा। इसे परमात्मा कह लो।

आकार कि शाकार भाबिबो,
निराकार कि ज्योतिरूप,
ए कौथा कारे शुधाबो,
सृष्टि कोरलेन कोथाय बोशे

कहां बैठकर तुमने सृष्टि बनायी है? तुम आकार हो या निराकार? उसका आकार कैसा है? निराकार है या साकार? क्या वह ज्योति स्वरूप है? ये सब बातें किससे पूछने जाऊं? लालन शाह कह रहे हैं, उसने इस विराट सृष्टि की रचना कैसे की? कहां बैठकर यह सब हुआ? इसको जानने की मेरी प्रबल इच्छा है। बुद्धि से तलाश नहीं होती परमात्मा की।

जिस्म की बात नहीं, अपने दिल तक जाना है।
लंबी दूरी तय करने में, वक्त तो लगता है।
ढूंढ़ रहा कोई काशी में, कोई काबा में।
जीवन में प्रभु को पाने में वक्त तो लगता है।

इसी जीवन में प्रभु को खोजना है, बुद्धि से नहीं। ह्रदय से खोजना है। ह्रदय तक आना है। ज्ञानी खोज–खोज कर हार जाते हैं और परमात्मा नहीं मिलता। और जो पुकार ह्रदय से उठती है; भक्त जब पुकारता है, भक्त परमात्मा के घर तक नहीं जाता, भक्त के आंसु, भक्त की तड़फ, भक्त का विरह, भक्त की पुकार और परमात्मा आ जाता है भक्त तक। भक्त परमात्मा के द्वार तक नहीं जाता। भक्त तो अपनी जगह बैठे–बैठे राख हो जाता है, खाक हो जाता है और पाता है कि परमात्मा बरस गया उस पर। परमात्मा दौड़ा चला आया उसके द्वार पर और उसको अपने कंठ से लगा लिया।

जो न काबे में है महदूद न बुतखाने में
हाय वो और इक उजड़े हुए काशाने में

जिस दिन उससे मिलन होता है, उस दिन भक्त पाता है कि जो चीज उसने मंदिरों में, मस्जिदों में बाहर खोजी थीं और नहीं मिलीं; वह अपने ही घर में मिल गयी। जहां उसको दुखः बेचैनी और न जाने क्या–क्या विष मिला और वह अचानक पाता है कि वहां अमृत बरसने लगा; आनंद बरसने लगा; आलोक बरसने लगा। जीवन धन्य–धन्य हो जाता है।

उपोदेशे गोल जोंदि रौय
कि भाबिये कि कोरे जाय
गोले होरी बोल्ले कि हौय
लालोन भेबे पाय ना दिशे

संत लालन क्या कहते हैं– केवल उपदेश से या हरि–हरि बोलने से या उसके बारे में सोचने से या बातें करने से बात नहीं बनती। सही दिशा कोई दिखा दे तो बात बन जाए, मेरी सकल इच्छा पूर्ण हो जाए।

उपोदेशे गोल जोंदि रौय

कि भाबिये कि कोरे जाय

हरि–हरि बोलने से परमात्मा नहीं मिलेगा। बोलने से कैसे मिलेगा परमात्मा? आप कोई भी प्रार्थना करो, परमात्मा प्रार्थनाओं से भी नहीं मिलेगा। परमात्मा भाव से मिलता है। बौद्धिक बाचतीच से नहीं मिलेगा; बाहर की खोज से नहीं मिलेगा। ऐसा व्यक्ति चाहिए जो हमें अपने भीतर की ओर उन्मुख कर दे। सही दिशा क्या है? सही दिशा है भीतर की दिशा। दसों दिशाओं में भटकते रहो, परमात्मा नहीं मिलेगा; सही दिशा में जाना होगा। वह दिशा है अपने भीतर की दिशा, अंतर्तम की दिशा और वह दिशा दिखाता है गुरु। गुरू से नाम को जानना होगा, परमात्मा से परिचय करना होगा। गुरु के चरणों में जाना होगा।

आइये परमगुरु ओशो को सुनें–

'जीवन है ऊर्जा– ऊर्जा का सागर। समय के किनारे पर अथक, अंतहीन ऊर्जा की लहरें टकराती रहती हैं– न कोई प्रारंभ है, न कोई अंत; बस मध्य है, बीच है। मनुष्य भी उसमें एक छोटी तरंग है; एक छोटा बीज है– अनंत संभावनाओं का। तरंग की आकांक्षा स्वाभाविक है कि सागर हो जाए और बीज की आकांक्षा स्वाभाविक है कि वृक्ष हो जाए। बीज जब तक फूलों में खिले ना, तब तक तृप्ति संभव नहीं है। मनुष्य कामना है परमात्मा होने की। उससे पहले पड़ाव बहुत हैं, मंजिल नहीं है। रात्रि–विश्राम हो सकता है। राह में बहुत जगह मिल जाएंगी, लेकिन कहीं घर मत बना लेना। घर तो परमात्मा ही हो सकता है। परमात्मा का अर्थ है– तुम जो हो सकते हो, उसकी पूर्णता। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है; कहीं आकाश में बैठा कोई रूप नहीं है; कोई नाम नहीं है। परमात्मा है तुम्हारी आत्यांतिक संभावना– आखिरी संभावना, जिसके पार फिर कोई जाना नहीं है; जिसके आगे फिर कोई जाना नहीं है। जहां पहुंचकर तृप्ति हो जाती है, परितोष हो जाता है। प्रत्येक मनुष्य तब तक पीड़ित रहेगा, तब तक तुम चाहे कितना ही धन कमा लो, कितना ही वैभव जुटा लो, कहीं कोई पीड़ा का कीड़ा तुम्हें भीतर काटता ही रहेगा; कोई बेचैनी सालती ही रहेगी; कोई कांटा चुभता ही रहेगा।

लाख करो भुलाने के उपाय, बहुत तरह की शराबें हैं, विस्मरण के लिए, लेकिन भुला न पाओगे। और अच्छा है कि भुला न पाओगे। क्योंकि काश तुम भुलाने में सफल हो जाओ तो फिर बीज, बीज ही रह जाएगा फूल न बनेगा।'

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

उन्नीसवां प्रवचन

अहम्-शून्यता: द्वार पूर्णता का

साँई दौरबेश जारा
आपोनारे फाना कोरे औघोरे मिशाय तारा।।
मोन जोदी आज हौओ रे फोकीर
नैओ जेने शेई फानार फिकिर धौरो औधोरा।।
फानार फिकिर ना जानिले
भौश्शो माखा हौये मौशकौरा।।
कूप जौले शे गौंगाजौल
पोड़ी ले शे हौयरे मिशाल उभौय ऐकधारा
तेम्नी जेनो फानार कौरोन
रूपे रूप मिशलो कौरा।।
मूरशिद रूप आर आलेक नूरी
ऐक मोने केमोने कोरी दूई रूप नेहारा।
लालोन बौले, रूप शाधोने
होशने जैनो ठिकहारा।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

साँई दौरबेश जारा

आपोनारे फाना कोरे औघोरे मिशाय तारा।।

साई, वहीं सच्चा दरवेश है जो स्वयं को मिटाकर सदा निरंकार में समाया रहता है। झेन फकीर से किसी ने एक बार पूछा, आई वॉन्ट गॉड! झेन फकीर ने क्या जवाब दिया, जानते हैं– ड्रॉप आई एंड ड्रॉप वॉन्ट। आई इज योर युगो वॉन्ट इज योर डिजायर। ये दोनों अगर तुमने ड्रॉप कर दिये, फिर जो शेष बचा वह गॉड है।

किसी ने ऐसे ही एक बार ओशो से पूछा– मैं ईश्वर के दर्शन करना चाहता हूं। कृप्या मुझे बताएं कि मुझे क्या करना चाहिए। ओशो ने कहा– ईश्वर ही ईश्वर है। सर्वत्र ईश्वर है। केवल जो मैं से भरे हुए हैं उनके लिए नहीं है। जो मैं को मिटाना जानते हैं, जो मैं को खोना जानते हैं, उनके लिए सर्वत्र ईश्वर है। और फिर उन्होंने यह कहानी सुनाई–

एक बार एक साधु के पास एक राजा आता है। राजा ने कहा मुझे परमात्मा चाहिए, परमात्मा के दर्शन करा दो, बताएं कि कैसे संभव है? राजा के लिए एक छोटी सी शर्त साधु ने बताई। कहने को बहुत छोटी थी लेकिन बहुत बड़ी थी।

साधु ने कहा सब कुछ छोड़ दो, बस अभी तुम्हें परमात्मा के दर्शन करा देता हूं। राजा वापस गया और सारा साम्राज्य दान में दे दिया और भिखारी की तरह आ गया। साधु ने कहा कि सब कुछ छोड़ देना इतना आसान है? साधु ने उसको काम दिया– कचरा ढोने का काम। सिर पर कचरे की टोकरी रखकर, पूरे आश्रम का कचरा साफ करना। वह रोज यही काम करता था। लोगों की बहुत करूणा आई कि राजा से इतनी कठिन तपस्या? इतना कठिन काम राजा के लिए। लोगों ने साधु जो जाकर सिफारिश की कि इनसे दूसरा काम कराया जाय। आप भले ही इनकी परीक्षा ले लें। इतना विनम्र इंसान ऐसा काम कर रहा है। कचरा ढोने का काम जो हम साधारण से साधारण लोग भी नहीं कर रहे हैं।

साधु ने कहा ठीक है, हम चलते हैं और परीक्षा लेते हैं। साधु राजा के पास गया। राजा घूम रहा था, उसी समय कचड़ा लेकर जा रहा था, पूरी व्यवस्था की गई थी। एक आदमी आता है, धक्का देता है और कचरा गिरा देता है। राजा कुछ नहीं बोला। राजा ने थोड़ी देर में कहा कि क्या आप 15 दिन पहले इतने अंधे हो सकते थे क्या? साधु ने कहा कि देखा, अभी इसकी अकड़ बरकरार है। वैसा का वैसा अकड़ा हुआ है। साधु ने फेल कर दिया। फिर 20–25 दिन गुजर गए फिर लोगों ने कहा अब वह बहुत बदल गया है। फिर साधु ने दूर से

देखने की कोशिश की क्या बदलाहट आई। पूरे आश्रम का कचरा सिर ढोकर जा रहा था, फिर किसी ने आकर धक्का दे दिया पूरा कचरा गिरा दिया। इस बार राजा ने कुछ नहीं कहा, केवल आंख से देखा। आंख से तो सब कुछ कह दिया, पूरी प्रतिक्रिया कर दी। और फिर कचरा उठाया और चल दिया।

साधु ने कहा– यह अभी भी वैसा का वैसा अकड़ा हुआ है। इसने कुछ भी नहीं छोड़ा है। कुछ साल बीत गये। एक बार फिर साधु देखने आया कि क्या अब कोई परिवर्तन आया। राजा जा रहा है कचरा ढोते हुए, फिर किसी ने आकर धक्का लगाया, पूरा कचरा गिर गया और राजा ने देखा भी नहीं कि किसने गिराया कचरा। वह झुका पूरा कचरा उठाया टोकरी में रखा और वापस अपना काम पर चल पड़ा। साधु ने राजा के सिर पर हाथ रखा और कहा कि अब तुमने सब कुछ छोड़ दिया है। अब तुम ईश्वर के दर्शन करने के योग्य हो गए; आओ मेरे साथ। और फिर उसे साधु ईश्वर का ज्ञान देता है।

परमात्मा हमारे निर–अहंकार भावदशा का नाम है। जब हम निर–अहंकारी हो जाते हैं और जो दशा बचती है वही परमात्मा है। हम परमात्मा ही हो गए। हमने पुराणों में कहानियां सुनी हैं ना कि देवताओं की छाया नहीं बनती। जब देवता चलते हैं तो छाया नहीं बनती है। कैसे नहीं बनती? ये तो प्रतीकात्मक है। जैसे शुद्ध कांच के आर–पार किरणें चली जाती हैं; कुछ बनता ही नहीं है; ऐसे ही देवता इतने शुद्ध हो गये हैं; इतने निर–अहंकारी हो गये हैं परमात्मा के पास रहकर कि उनकी छाया नहीं बनती। ऐसी शुद्धि चाहिए। जब हम इतने शुद्ध हो जाएं कि परमात्मा हमारे आर–पार बहने लगेगा। जैसे वृक्षों से हवाएं गुजरती हैं ऐसे ही परमात्मा हमारे थ्रू गुजरने लगता है। जब तक अंहकार है तब तक समझो कि कोई चट्टान ही है और वह बहने में अवरोध है। यह चट्टाने रूपी अंहकार हटा तो परमात्मा हमारे थ्रू बहने लगता है।

जैसे पर्वतों से गंगा बहती है, ऐसे ही हमारे थ्रू परमात्मा बहने लगता है। बस एक ही शर्त है– यह अहंकार नाम की चट्टान कैसे पिघल जाए। और यह पिघलती है किसी जीवंत गुरु के पास, किसी जीवंत गुरु के चरणों में। ऐसे ही ये चट्टान पिघलती है और हमारे आर–पार परमात्मा बहने लगता है। उस बहती हुई ऊर्जा का नाम परमात्मा है। वह निर्मल ऊर्जा परमात्मा की अनुभूति है। परमात्मा का अर्थ ही यही होता है– आत्मा का परमरूप।

मोन जोदी आज हौओ रे फोकीर
नैओ जेने शेई फानार फिकिर धौरो औधोरा।।

हे मन! अगर फकीरी लो तो सर्वप्रथम मिटने की कला जाननी होगी; निरंकार में लौ लगानी होगी। जिसे मिटने की कला नहीं आती वह सिर्फ मजाक बन कर रह जाता है। जैसे

भस्म मलकर झूठा संत नहीं बना जा सकता, वैसे ही अहंकार को गलाये बिना फकीरी व्यर्थ है। मिटने को जो जितना राजी है, उतना ही मनुष्य है। और जो मिटने में जितना सफल हो गया उतना ही धन्यभागी है।

जीना भी पहले था क्या जीाना,
बस धींमें–धींमें था मरना।
सद्‌गुरु के चरणों में मरकर,
पिया अमृत रस का झरना।

मनुष्य एक प्रार्थना है लीन हो जाने की। मनुष्य मिटना चाहता है। जैसे नदी मिटना चाहतीं है सागर में, पर्वतों को पार करके मैदानों से दौड़ती हुई; सागर से मिलन की आकांक्षा में। ऐसे ही मनुष्य मिलना चाहता है उस असीम से; उस परम दशा में विलीन होना चाहता है। जैसे सरिता सागर की ओर बह रही है ऐसे ही यह जीवन चैतन्य का सरित्प्रवाह है। बहा जा रहा है उस अस्तित्त्व से मिलने के लिए। और इस भाव में क्या बाधा है? इस भाव में मात्र एक बाधा है– वह है हमारा अहंकार।

मेरे होने में है जुदाई, मिलन तो खुद के मिटने में है।
फूल के लिखने की संभावना, बीज के पूरे मिटने में है।

तो मिटने की कला चाहिए। और जिस दिन मिटने की कला हम जानते हैं हम फकीर हो जाते हैं। उसके बिना सारी फकीरी व्यर्थ है। सारे आडम्बर रचो लेकिन फकीर नहीं हो सकते।

सहर तक शमै–महफिल! मैंने जल बुझने की ठानी है
हमें ये देखना है, खाक हो जाते हैं हम कब तक

मिटने की तैयारी चाहिए। मिटने की तैयारी एक मात्र साधना है। यह मैं विदा हो जाए। जीसस ने कहा है– अपने को जो खोएगा, वह पाएगा। जो अपनी जगह बैठकर खाक हो जाता है, परमात्मा की बारिश उसके ऊपर होनी ही होनी है। परमात्मा उस तक दौड़ा चला आता है। खाक होने की तैयारी चाहिए। संत यारी साहब कहते हैं–

गुरु के चरण की रज लैके, दोउ नैन के बींच अंजन दीया।
तिमिर माहिं उजियार हुआ, निरंकार पिया को देखि लिया।
सतगुरु ने जो करी किरपा, मरिके यारी जुग–जुग जीया।।

गुरु के चरणें की रज लेकर, गुरु के चरणों की धूल बन जाओ। जिस दिन तुम मिट जाओगे उस दिन भीतर तुम पाओगे, अपने भीतर मौन में, अपने भीतर निराकार में गूंज़ता हुआ एक स्वर पाओगे, उसका नाम निरंकार है। उस आकाश और उस गूंज़ को जब हम दोनों एक साथ अनुभव होते हैं, वह दशा है निरंकार। उसमें डूबने की नाम फकीरी है। वही वास्तविक फकीरी है।

लालन साहब कहते हैं कि कुए का जल जब भी जब गंगाजल में मिलता है तो एक धारा बनकर गंगाजल ही बन जाता है। मिटकर ही निरंकार का स्वरूप जाना जा सकता है।

आइए, परमगुरु ओशो को सुनते हैं–

'भक्ति मृत्यु की कला है। भक्ति परमात्मा को खोजने की कला नहीं है, अपने को खोने की कला है। मुझे फिर दोहराने दें। भक्ति परमात्मा को खोजने की कला नहीं है, अपने को खोने की कला है। खोजने में तो अहंकार बना ही रखता है। खोजनेवाला बना रहता है। खोना है अपने को। और जिसने अपने को खोया उसने उसे पाया। अपने भीतर ही नहीं फिर, फिर सब तरफ वही मालूम पड़ता है। फिर हर पत्ती में उसी की हरियाली है। हर हवा के झोंके में उसी की ताजगी है। चांद–तारों में वही तुम्हारी तरफ झांकता है और तुम्हारे भीतर भी वही चांद–तारों की तरफ झांकता है। एक बार परदा हटे– 'सुबह फूटी तो आसमां पे तेरे रंगे रूख्सार की फुहार गिरी।' रात छायी तो रू–ए आलम पर तेरी जुल्फों की आवशार गिरी।'

उसी की जुल्फें है रात, ढांक लेती है गहरे अंधेरे में तुम्हें। उसी का रंग–रूप है। उसी की बाहर है। उसी के गीत हैं! उसी की हरियाली है! उसी का जन्म है, उसकी मृत्यु है। तुमने

व्यर्थ ही अपने को बीच में खड़ा कर लिया है। अपने को बीच में खड़ा करने के कारण परमात्मा खो गया है। और परमात्मा को तुम जब तक न जान लो, तब तक तुम अपनी ही ऊंचाई और गहराई से वंचित रहोगे।

परमात्मा यानि तुम्हारी आखिरी ऊंचाई। परमात्मा यानि तुम्हारी आखिरी गहराई जब तक तुम उसे न जाने लो; तब तक तुम अपनी ही ऊंचाई और गहराई से वंचित रहोगे। उस मनुष्य से ज्यादा दरिद्र और कोई भी नहीं, जिसके जीवन में परमात्मा भाव खो गया। जिसके जीवन में परमात्मा की तरफ उठने वाली आकांक्षा खो गयी; जो आदमी होने से तृप्त हो गया, उस आदमी से दरिद्र और कोई भी नहीं।

नीत्से ने कहो है– अभागे होंगे वे दिन जब आदमी की प्रत्यंचा पर परमात्मा की तरफ जाने का तीर न चढ़ेगा। तब उन्हें पता ही नहीं चलता कि जो गहराई उनके ही पैरों के नीचे छिपी थी और सदा उपलब्ध थी, बस जरा डूबने की बात थी और जो ऊंचाई सदा उनके ही सिर थी आसमां की तरह फैली थी, जरा आंखें ऊपर उठाने की बात थी। वे भूल ही जाते हैं। आदमी ही हो जाने से तृप्त मत हो जाना; उससे बड़ा कोई दुर्भाग्य नहीं है।

इस सदी की सबसे बड़ी तकलीफ यही है कि उसके सौंदर्य का बोध खो गया है। हम लहरें हैं उस सागर की थोड़ा भीतर झांके सागर हमारे भीतर है। हर लहर के भीतर सागर है लेकिन लहरें बड़ी अहंकार पर चढ़ गयीं हैं। उन्हें यह बात ही समझ में नहीं आती कि अपने भीतर झांकने से उसका पता चल सकता है। जिससे हम पैदा हुए और जिसमें हम खो जाएंगे।'

लालन शाह कहते हैं– मुर्शिद रूप और नूर एक ही हैं। मन दोनों में भेद न करना। गुरु स्वरूप और ज्योति स्वरूप एक ही हैं। सद्‌गुरु ही तो परमात्मा है, ज्योतिस्वरूप है। लालन शाह कहते हैं कि अगर दोनों में भेद करोगे तो दिशाहीन हो जाओगे। दोनों में भेद कैसे न हो? यह तभी संभव है। जब गुरु और प्रभु में ऐक्यभाव होगा। ऐक्यभाव कैसे होगा? जब हमारे भीतर एकता आ जाए। हम उस अद्वैत अवस्था में पहुंच जाएं। हम अपने भीतर जिस दिन ब्रह्म को जानेंगे तभी यह ऐक्यभाव आ सकता है गुरु और प्रभु में। जैसे बीज गलकर वृक्ष हो जाता है। जैसे बीज की मुलाकात वृक्ष से नहीं होती है, वैसे ही भक्त मिटकर भगवान हो जाता है। भक्त की मुलाकात भगवान से नहीं होती और यही है ऐक्यभाव।

बीसवां प्रवचन

जीवन- अनुपम भेंट प्रभु की

मेरे सांअर आजोब लीलेखैला ता केउ बूझते पारे
कालाय शोने औन्धो दैखे एअ भाब नौरोरे।।
नैंड़ा शे नेचे बैड़ाय
औन्धो जौनाय शौब दैखेरे।
मौरा कौरे ताजा आहार धोरे–धोरे।।
जौल नाइ देखि शौद्दो,
भाशे पौद्दो शेअ पुकुरे।
ए बौड़ो रौहोश्यो–कौथाबोलबो कारे।।
खाँचाय कोउतौर नाइ तार
उड़छे पाखी निरौन्तौरे।
शिरान साँअ कौये, दैखरे लालोन दैख नौजोरे।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

आज का बाउल गीत बड़ा प्यरा है–

मेरे सांअर आजोब लीलेखैला ता केउ बूझते पारे

कालाय शोने औन्धो दैखे एअ भाब नौरोरे।।

मेरे साईं, मेरे सदगुरु की अद्भुत लीला है, कोई समझ नहीं पाता। इस भाव की नगरी में बहरा सुनता है और अंधा देखता है। मेरे साईं, मेरे सद्गुरु की अद्भुत लीला! गुरु का खेल, गुरु की लीला क्या है? गुरु का खेल, गुरु की लीला है, शिष्य को अतीन्द्रिय अनुभवों में ले जाना।

गुरु कहता है कि बहरे हो जाओ; बहरे हो जाओ बाहर के प्रति। जब हम बहरे होते हैं बाहर के प्रति; तब हमें भीतर परमात्मा की जो आवाज है वह सुनाई देती है, भीतर एक बांसुरी बज रही है कृष्ण की वह सुनाई देती है। जब वह कहता है कि बाहर के प्रति अंधे हो जाओ, पट्टी बांध लो, बाहर मत देखो, बाहर के प्रति उदासीन हो जाओ; तब हमारा भीतर देखना शुरू होता है; तब अंतर दर्शन शुरू होता है। तब वह आलौकिक अनुभव, वह दिव्य प्रकाश और उसके अजब–अजब खेल भीतर शुरु हो जाते हैं; जिनका उसके दर्शन केवल गुरु ही करा सकता है। यही उसके अजब खेल हैं, यही उसकी अजब लीला है।

बाकि जो कहते हैं कि अंधा सुने, बहरा देखे इसको चमत्कारी घटनाओं की तरह मत ले लेना, ये प्रतीकात्मक हैं। यह तथ्य रूप से घटित हो ऐसा नहीं; ऐसा नहीं है कि कोई अंधा देखने लगा कि उसकी आंखें खुल गयीं; यह बहुत मीठा प्रतीक है। हम तो अंधें हीं हैं, हमें बाहर दिखाई देता है, परमात्मा बाहर मौजूद है, लेकिन हमें दिखाई नहीं देता। हम अंधें हैं। लेकिन गुरु हमारी आंख खोल देता है। और हम भीतर दर्शन करते हैं परमात्मा के और बाहर देखते हैं। अब तक हम अंधे थे, अब तक हमारी आंख नहीं थीं। गुरु हमें आंखें देता है और हम दर्शन करने लगते हैं। भीतर भी उसके दर्शन और बाहर भी उसके दर्शन। कबीर साहब कहते हैं–

खुले नैन पहचानूं हंस–हसं, सुंदर रूप निहारूं।

आंख न मूंदूं कान न रूंदूं, तनिक कष्ट नहीं धारूं।

फिर इसकी भी कोई जरूरत नहीं पड़ती लेकिन शुरुआत में पहले बाहर की प्रति उदासीन होना होगा; बाहर के दृश्यों के प्रति उदासीन होना होगा; भीतर देखना शुरु करो, दूसरों को देखना बंद करो, स्वयं को देखना शुरु करो।

नैंड़ा शे नेचे बैड़ाय

औन्धो जौनाय शौब दैखेरे।

मौरा कौरे ताजा आहार धोरे–धोरे

लंगड़ा नाचता है, लंगड़ा चलता है, ऐसी भावपूर्ण नगरी है यह और मृत व्यक्ति ताजा

आहार करने लगता है। लंगड़ा चलने का क्या मतलब है? ऐसे कैसे चमत्कार हो सकता है? जीसस के बारे में एक सूफी कथा है–

जीसस ने जिस शहर में चमत्कार किये थे, उस शहर में गये सोचा कि एक बार देखा जाए। जीसस उस शहर में जाते हैं; बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक उस शहर में प्रवेश करते हैं और प्रवेश करते ही देखते हैं कि एक आदमी वेश्या के पीछे भागा जा रहा है और वेश्या डर के मारे भाग रही है। जीसस ने रोका और कहा कि ऐसा क्यों कर रहे हो तुम? ऐसी क्रूर हिंसा तुम क्यों कर रहे हो? उसने पीछे मुड़कर देखा और कहा कि अरे! आपने ही तो मुझे आंखे दी थीं, मैं तो अंधा था। आपकी कृपा से मुझे सौंदर्य बोध हो गया। मैं सौंदर्य देखने के काबिल हो गया और मैं इससे अच्छा उपयोग इन आंखों का क्या करूं? सुंदरता के पीछे भाग रहा हूं। जीसस ने अपना सिर ठोक लिया।

फिर और आगे चले तो देखा कि एक लंगड़ा किसी की जेब काटकर भागा जा रहा है। जो पैर जीससे ने दिये थे मंदिर जाने के लिए, वे पैर चोरी करने के लिए उठ गये। फिर ऐसे ही कहानी बढ़ती जाती है। अंत में जीसस ने देखा कि एक व्यक्ति आत्महत्या करने के लिए फांसी पर लटकने जा रहा है। जीससे ने उसके कंधे पर हाथ रखा और कहा कि तुम यह क्या कर रहे हो? प्रभु की भेंट को ऐसे दुत्कारते हो? ऐसे इसका दुरुपयोग करते हो? यह जीवन कितनी अनुपम भेंट है प्रभु की।

उसने पीछे मुड़कर देखा कि अरे तुम फिर आ गये। एक बार मैं मर चुका था, मैं लजारस हूं। आपने पहचाना हो या न पहचाना हो? लेकिन मैंने तुम्हें पहचान लिया। तुम मुझे मरने क्यों नहीं देते। एक बार मर चुका था और तुमने मुझे निकाल लिया कब्र में से। ऐसे जीवन का करूं क्या? जहां इतनी पीड़ा, जहां इतना संताप, जहां इतना दुःख मैं नहीं जीना चाहता हूं। जीसस बहुत निराश हो गए। ऐसा चमत्कार किस काम का? ये सब प्रतीकात्मक है। ऐसा बिल्कुल नहीं है कि जीसस ने ऐसा किया होगा; लेकिन यह तो प्रतीक है।

असली चमत्कार क्या है? असली चमत्कार है जीवन की कला आ जाए। कैसे हम इस जीवन में आनंदित रहना सीख जाएं। यह चमत्कार गुरु देता है। वह प्रज्ञा देता है, प्रज्ञाचक्षु देता है। विवेक जगाता है हमारे भीतर। कैसे हम इस जगत में प्रेम से जी सकें।

मौरा कौरे ताजा आहार धोरे–धोरे।

और जो मर गया है, वह आहार कर रहा है। मरा हुआ व्यक्ति आहार कर रहा है। इसका क्या मतलब? जिसने भी अमृत का स्वाद जाना है; मरकर ही जाना है। जिसके लिए गोरखनाथ कहते हैं–

मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरो, जिस मरणी मर गोरख दीठा।

एक मौत है जो शरीर के साथ आती है। हमारा शरीर मरता है। हम उसके लिए ही जी रहे हैं शायद। हम मरने के लिए ही जी रहे हैं। मिरदाद ऐसा कहते हैं– हम मरने के लिए जीते

हैं। और जो साधक है, वह जीने के लिए मरता है। कैसे? एक मौत तो शरीर की आयेगी लेकिन एक और मौत है जो हम बुलाते हैं। वह मौत है हमारे अहंकार की। कैसे हमारा अहंकार मर जाए। और जिसका अहंकार मर गया, वही अमृत का झरना पी पाता है। उसके जीवन में अमृत का स्वाद आ पाता है। कैसे हम जीते–जी मरने की कला सीखें? गुरु सिखाता है– 'जीवित मरिए, भवजल तरिये'।

कैसे हम जीते–जी मर जाएं, कैसे हम इस जगत के प्रति मरे हुए जीएं। हमारा अहंकार मरा हुआ जिये। ऐसा नहीं है कि हम जीवन के प्रति उदासीन हो जाएं, कोई रिस्पॉन्सबिलिटी हीं न रहे; कोई रिस्पॉन्स ही न दे। नहीं, प्रतिक्रिया नहीं करें। बिना प्रतिक्रिया के कौन जी सकता है? जो निर–अहंकारी है। यह अहंकार कैसे मर जाए? हम कैसे मिट जाएं? यह कला गुरु देता है– 'जीवित मरिए, भवजल तरिए'।

कैसे अपनी इंद्रियों को सिकोड़कर एक बिन्दु तक लाएं ताकि वह बिन्दु जीवंत हो जाए और वह ऊर्जा परमात्मा में, आत्मा में डूब जाए। फिर परमात्मा का अनुभव, फिर अतीन्द्रिय अनुभव, फिर अमृत का स्वाद, फिर पता चलता है कि शरीर के पार कुछ अजन्मा है। इस क्षणभंगुर शरीर के पार कुछ शाश्वत है जो इसी शरीर में रहता है। इसी क्षणभंगुर शरीर में वह शाश्वत जीता है।

अगर मरने की कला सीखनी है तो जीवंत गुरु के पास सीखनी होगी। जीवित गुरु के पास रहना आग के पास रहने जैसा है। शून्य होने का साहस चाहिए, जलने की तैयारी चाहिए। उसमें हमार अहंकार भस्मीभूत हो जाएगा। जो इतनी हिम्मत करता है, जिसको ऐसी चुनौती स्वीकार है, वही तो गुरु के पास रह पाता है। जब बुद्ध आते हैं तो बुद्ध के पास कितने लोग जीं पाते हैं? जब महावीर आते हैं तो कितने लोग जी पाते हैं? जब तक गुरु जिंदा है उसके पास रहना एक चुनौती है क्योंकि जब तक हमारा अहंकार है तब तक हम उसके पास रह ही नहीं सकते। वह हमें प्रतिपल मिटाता है।

गुरु कुम्हारा शिश कुंभ है, गढ़ गढ़ काढ़े खोट
अंतर हाथ सहार दे, बाहर–बाहर चोट।

तो यह जो चोट है, इस चोट को सहने का साहस चाहिए। और जिसने यह साहस बटोर लिया, उसने मरने की कला सीख ली। ओशो की एक किताब का नाम है–'मैं मृत्यु सिखाता हूं' मरने की कला सीखाता हूं। जितने भी सद्‌गुरु आये, उन सबने बताया कि कैसे हम इस जीवन में जीते जी मरने कला सीख जाएं। जो इस जीवन के रहते–रहते मृत्यु की कला सीख जाता है, उसने परमात्मा पा लिया। वह कभी मरता नहीं है फिर; उसे कभी मौत नहीं आती; उसे यम लेने नहीं आते; उसे राम लेने आता है। उसे सद्‌गुरु लेने आता है।

जौल नाइ देखि शौद्दो,
भाशे पौद्दो शेई पुकुरे।
ए बौड़ो रौहोश्यो–कौथाबोलबो कारे।।

उस रहस्यमयी नगरी में सरोवर में जल नहीं है पर कमल खिलते हैं। ऐसी अनोखी अद्भुत बात किससे कहूँ।

'सुनो भाई साधो' नामक प्रवचनमाला में कबीर साहब के वचन को समझाते हुए सदगुरु ओशो कहते हैं–

'बिना ताल जहं कमल फुलाने, समुझि परे जब ध्यान धरै!

बिन बाजा झकार उठे जहं, तेहि चढ़ि हंसा केलि करै!

कोई सरोवर नहीं है, लेकिन कमल खिल रहे हैं। कमल पूरब में बहुत गहरा प्रतीक है और कमल का फूल है भी बहुत रहस्यपूर्ण। बाहर जो कमल का फूल है वह भी रहस्यपूर्ण है। तो भीतर के कमल का तो तुम अंदाज नहीं लगा सकते। बाहर के कमल की कुछ खूबियां समझ लो, क्योंकि बाहर के कमल में भी भीतर के कमल की थोड़ी सी झलक है।

बाहर के कमल की पहली तो खूबी यह है कि यह मिट्टी से, गंदी मिट्टी से पैदा होता है– और उस जैसा पवित्र फूल नहीं है! कूड़ा–करकट, कचरा, कीचड़– उससे कमल पैदा होता है; लेकिन कमल जैसी पवित्र पंखुरी तुम कहीं भी न पा सकोगे। कमल जैसी कोमल, ताजी– और कीचड़ से पैदा होता है! तो कमल बड़े से बड़ा रूपांतरण है। कीचड़ से कमल– बड़े से बड़े क्रांति है। तो तुम अपनी कीचड़ से परेशान मत होना। माना कि कीचड़ है, बहुत कीचड़ है– उस पर तुम ध्यान भी मत देना। भीतर कमल भी खिल रहे हैं उस कीचड़ में। तुम ध्यान कमल पर देना। चोरी है, बेईमानी है, झूठ है, फरेब है, ईर्ष्या है, द्वेष है, घृणा है, माया, मोह–मत्सर है– बहुत कीचड़ है। लेकिन कीचड़ है तो कमल भी होगा।

तुम जरा भीतर ध्यान देना– बाहर कीचड़, भीतर कमल और कीचड़ को मिटाने में मत लगना। क्योंकि उसी कीचड़ से कमल को पोषण मिल रहा है। कीचड़ के दुश्मन भी मत हो जाना; तुम तो कमल की तलाश करना। और जिस दिन तुम कमल को पहचान लोगे उस दिन कीचड़ को भी धन्यवाद दोगे। उस दिन तुम कहोगे, इस शरीर का भी मैं अनुगृहीत हूं, क्योंकि इसके बिना यह कमल कैसे खिलता! अगर तुम कीचड़ होते तो किसको यह ख्याल उठता कि कीचड़ को बदलें; किसको यह ख्याल उठता कि रूपांतरण करें; किसको यह ख्याल आता कि क्रांति करें; किसको यह ख्याल आता कि शुभ, सत्यम्, सुंदरम् की यात्रा करें? यह ख्याल कमल का है। तुम भीतर ध्यान दो, और तुम्हें वहां कमल खिलते दिखाई पड़ेंगे।

तो पहली तो खूबी है कमल की कि गंदी से गंदी कीचड़ से शुद्धतम, पवित्रम पंखुडियां उभरती हैं। और अगर कीचड़ में कमल छिपा है, तो माया में ब्रह्म छिपा है; शरीर में आत्मा छिपी है। दूसरी कमल की खूबी है कि रहता है पानी में, लेकिन पानी छूता नहीं; रहता है पानी में लेकिन अस्पर्शित। यही तो साधक की यात्रा; रहे संसार में और अस्पर्शित! पानी तो चारों तरफ है, लेकिन कमल ऊपर उठ जाता है पानी के। कीचड़, पानी, सबको पीछे छोड़ देता है; भाग नहीं जाता, रहता वहीं है– ऊपर उठ जाता है। और फिर वर्षा का पानी भी गिरे, ओस का पानी भी गिरे, कमल को छूता नहीं। बूंद आती है और जाती है– सरक जाती है।

कमल के पास बैठकर कभी कमल से सरकती बूंद को देखना, उस पर ध्यान करना। एक बूंद गिरती है, छूती भी नहीं, दूर ही दूर बन रहती है। इतने पास होकर भी! कमल भी पंखुडी पर होती है। फिर भी कहीं कोई स्पर्श नहीं होता। बूंद ऐसी लगती है जैसे पानी की नहीं है, मोती है।'

कबीर साहब का पूरा पद इस प्रकार है–

रस गगन गुफा में अजर झरै।
बिन बाजा झनकार उठै जहँ, समुझि परै जब ध्यान धरै।
बिना ताल जहँ कँवल फुलाने, तेहिं चढ़ि हंसा केल करै।
बिन चंदा उजियारी दरसै, जहँ तहँ हंसा नजर परै।
जुगन जुगन की तृखा बुझानी, कर्म भर्म अघ ब्याधि टरै।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, अमर होय कबहूँ न मरै।

जहां बाजा नहीं है लेकिन झंकार हो रही है। गगन गुफा में जाकर ऐसा रस झर रहा है। 'समुझि परै जब ध्यान धरै' लेकिन कब समझ में आता है? जब हमारा ध्यान अपने भीतर की ओर जाता है। जब हम बाहर के प्रति बहरे हो गए, बाहर के प्रति अंधे हो गए तब हमारा ध्यान अपने भीतर जाता है। अपने अंतर्तम में, गगन गुफा में जाता है। और वहां ऐसा रस प्रतिपल झर रहा है, जहां ताल नहीं है, लेकिन वहां कमल ही कमल खिल रहे हैं। वहां चांद नहीं है लेकिन उजाला ही उजाला है दस देश में। ऐसी रहस्यमयी नगरी है। उस रहस्यमयी नगरी में गुरु ले जाता है हमें। और ऐसी नगरी में जो प्रवेश कर जाता है, वह अमर हो जाता है, उसे मौत कभी नहीं आती है।

खाँचाय कोउतौर नाइ तार
उड़छे पाखी निरौन्तौरे।
शिरान साँई कौये, दैखरे लालोन दैख नौजोरे

पिंजरे में कबूतर नहीं पर पंछी सदा उड़ता है। संत लालन कहते हैं तू नज़र भर कर देख ले; ऐसी परम लीला मेरे साँई ही रच सकते हैं। ऐसी लीला कि पिंजड़े में कबूतर नहीं, फिर भी पंक्षी उड़ रहा है।

विज्ञान का आधार है–कार्य और कारण। कोई भी कार्य हो रहा है, उसका कोई कारण है। लेकिन धर्म का आधार अकारण। आनंद अकारण है, प्रेम अकारण है, अपने होने का अहसास अकारण है। आत्मा के कोई माता–पिता नहीं हैं। परमात्मा असृश्ट है। ऐसा अद्भुत, अनोखा और विस्मय का यह जगत है।

धन्यवाद। हरिं ओम तत्सत्।

इक्कीसवां प्रवचन

दास्याभक्ति क्या है?

आज आमार औन्तौरे कि होलो साँई
आज घूमेर घोरे चाँद गोउर हेरे
ओगो आमी जैनो आमी नोई।।
आज आमार गोउर पौदे मोन मोजीलो
आरकिछू ना लागे भालो
शौदाय मोनेर चिन्ता ओई
आमार शौर्बोश्शो धौन ओ चाँद–गोउरांगो धौन
शेई धौन किशे पाई गोताई शुधाई।।
जोदी मोरी गोउर–बिच्छेद–बाने
गोउर–नाम शुनाइयो काने
शौर्बांगे लिखो नामेर बोइ।
एइ बौर दे गो शौबे
आमी जौन्मे–जौन्मे जैनो
एई गोउरपौदे दाशी होइ।।
बौन पोड़े तो शौबाई देखे।
मोनेर आगुन केबा देखे
आमार रौशोराज चोइतोन्यो बोइ।
गोपीर एमोनि दौशा ओकि मौरोन दौशा
औबोध लालोन रे तोर शे भाब कोई।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार!

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

आज आमार औन्तौरे कि होलो साँई

आज घूमेर घोरे चाँद गोउर हेरे

ओगो आमी जैनो आमी नोई।।

आज मेरे अंतर में क्या हुआ प्रभु! घोर तंद्रा में गौर चाँद कृष्ण स्वरूप को निहार कर मैं स्वयं में ही न रही। बाउल गौर चांद स्वरूप कृष्ण को कहते हैं। आज मेरे अंतर में क्या हुआ प्रभु! घोर तंद्रा। घोर तंद्रा समाधि को कह रहे हैं। समाधि और सुषुप्ति दोनों एक ही जैसी हैं। दोनों में मनुष्य पूर्ण विश्राम में है। दोनों में मनुष्य अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। लेकिन एक में उसे पता नहीं है, और एक में उसे पूरा होश है। समाधि में उसे होश है, सुषुप्ति में उसे अपने विश्राम का पता नहीं है; अपने जोड़ का पता नहीं हो रहा है। इसलिए समाधि और सुषुप्ति को एक जैसा कहा गया है। कुछ ऐसा समझो कि एक व्यक्ति बगीचे में गया। अगर वह जागा हुआ गया है, तो उसे बगीचे की शुद्ध हवाएं असर कर रही हैं यह उसको पता चलेगा। उसे अच्छा लग रहा है, यह पता चलेगा। उसे फूलों की खुशबु आ रही है, यह पता चलेगा। वह अचानक इतना फ्रैश हो गया, यह पता चलेगा। एक सोए हुए व्यक्ति को अगर हम बगीचे में लें जाएं, उसके नासापुटों में भी सुगंध जा रही है। उसके भीतर भी आक्सीजन जा रही है। सब कुछ उसे वैसा ही हो रहा है। लेकिन उसे पता नहीं है। यही भेद है सुषुप्ति और समाधि का।

गौर चाँद कृष्ण स्वरूप को निहार कर मैं स्वयं में ही न रही। जब हम प्रेम में होते हैं, तो सारी दीवारें गिर जाती हैं।

जान तुझ पर निसार करता हूं,

मैं नहीं जानता हुआ क्या है?

पता ही नहीं चलता कि क्या हो गया है। सारी सीमाएं धूमिल जो जाती हैं प्रेम में। प्रेमी और प्रेयसी दूसरों को दो दिखाई देते हैं। लेकिन वे दो नहीं हैं। वास्तव में प्रेमी प्रेयसी हो गयी है और प्रेयसी प्रेमी हो गया है। दोनों में अभेद हो गया है। जब तक भेद है, जब तक दूसरा दूसरे की तरह दिखाई पड़ रहा है; दूसरा दूसरे की तरह अनुभव में आ रहा है, तब तक प्रेम नहीं है, वह काम है और उससे संसार बनाता है और संसार में ले जाता है।

किसको पत्थर मारुं कैसे कौन पराया है।

शीश महल में हर इक चेहरा अपना लगता है।

दीवालों से मिलकर रोना, अच्छा लगता है।

हम भी पागल हो जाएंगे, ऐसा लगता है।

जिन दिन लगे दूसरा, दूसरा न रहा, यह है प्रेम। और यह प्रेम परमात्मा के द्वार तक ले जाता है। गौर चाँद कृष्ण स्वरूप को निहार कर मैं स्वयं में ही न रही।

प्यार ही प्यार में हमें ये क्या होने लगा?
तुम भी मिटती सी हो, मैं भी खोने लगा।
प्यार इक द्वार था, भीतर तो पूजा हो रही है,
जाने अनजाने ही नवलोक शुरु होने लगा।
प्यार ही प्यार में यह क्या होने लगा?

नारद कहते हैं– त्रिभंग! प्रेमी–प्रेयसी–प्रेम। जब ये तीनों मिट जाएं, केवल एक रह जाए, प्रेम रह जाए; न प्रेमी रह जाए न प्रेयसी रह जाए। और यह भी पता चले कि प्रेम है, तब तक द्वैत है। जिन दिन प्रेम का भी पता चलना बंद हो जाए; यह प्रेम भक्ति का द्वार है।

आज आमार गोउर पौदे मोन मोजीलो
आरकिछू ना लागे भालो
शौदाय मोनेर चिन्ता ओई
आमार शौर्बोश्शो धौन ओ चाँद–गोउरांगो धौन
शेई धौन किशे पाई गोताई शुधाई–

आज कृष्ण पद में मेरा मन रम गया है। मुझे और कुछ अच्छा नहीं लगता। मेरे मन की बस एक यही चिन्ता है कि गौरांग कृष्ण धन जो मेरे सर्वस्व धन हैं, उस धन को कैसे पाऊँ, उसकी साधना कैसे करूँ। बस यही सोचती रहती हूँ।

कृष्ण को कैसे पाऊं? परमात्मा को कैसे पाऊं? कुछ करके नहीं पाया जाता। साधना से परमात्मा नहीं मिलता, प्रेम से परमात्मा मिलता है। भाव से परमात्मा मिलता है।

शेख फरीद के पास एक बार एक सेठ गया। सेठ ने कहा कि मुझे परमात्मा के दर्शन करा दो। फरीद ने कहा चलो मेरे साथ। हम नदी किनारे चलते हैं, वहां पर तुम्हें परमात्मा की अनुभूति करायेंगे, परमात्मा के दर्शन करायेंगे। सेठ शेख फरीद के साथ–साथ चला। दोनों नदी के तट पहुंचे। अचानक शेख फरीद ने सेठ को धक्का दे दिया। सेठ बिल्कुल दुबला–पतला था, एक ही धक्के में नदी में गिर गया। शेख फरीद भी नदी में कूद गया और उसकी छाती पर बैठकर बैठ गया। सेठ ने शेख फरीद को धक्का दिया और नदीं से ऊपर तट पर आ गया।

सेठ ने कहा– तुम कसाई हो या गुरु? तुम तो मेरे जान लेने पर उतारू हो। शेख फरीद हंसने लगे। उन्होंने पूछा कि जिस समय तुम पानी में थे, जिस समय मैं तुम्हारे ऊपर

था उस समय तुम्हारे अंदर क्या ख्याल था? कौन से विचार थे? सेठ ने कहा कि विचार! एक ही मात्र भाव था कि मैं कैसे इस स्थिति से बाहर आऊं। कैसे मेरे भीतर सांस आये, कैसे मैं इस पानी से ऊपर आऊं। बस एक ही बात थी। सारे विचार थम गये थे। कुछ भी नहीं था मात्र एक कोशिश थी कि कैसे बाहर आ जाऊं।

जीवन में बस एक ही बात रह जाए कि कैसे परमात्मा मिले। और याद रखना, साधना क्या कर रहे हो, यह बात नहीं है; साधना कैसे कर रहे हो, कितनी टोटैलिटी है, कितनी अंखड़ होकर होकर तुम साधना कर रह हो, कितना अखंड तुम्हारा प्रेम है। नारद कांताभक्ति की बात करते हैं– स्त्री जब प्रेम करती है, उसके लिए प्रेमी ही सर्वस्व धन है। उसके लिए प्रेमी ही सब कुछ है। और जो पुरुष का प्रेम है वह बंटा हुआ है। उसे धन भी चाहिए, उसे राजनीति भी चाहिए, उसे पद भी चाहिए। लेकिन स्त्री पूर्ण समर्पित होकर प्रेम करती है। यही क्वालिटी है भक्ति की। ऐसी भक्ति से परमात्मा मिलता है। ऐसी भक्ति से सर्वस्व कृष्ण धन मिलता है।

जोदी मोरी गोउर–बिच्छेद–बाने
गोउर–नाम शुनाइयो काने
शौर्बांगे लिखो नामेर बोइ।
एइ बौर दे गो शौबे
आमी जौन्मे–जौन्मे जैनो
एई गोउरपौदे दाशी होइ।।

अगर किसी दिन कृष्ण के विरह बाण से मरूँ तो कृष्ण नाम ही मेरे कान में देना। मेरे सर्वांग पर कृष्ण नाम लिख देना। सब मुझे यही वरदान दो कि मैं जनम–जनम कृष्ण पद की दासी बनूं उनका नाम ही मेरे लिए सब कुछ हो जाए।

'श्याम मने चाकर राखो जी'

कैसे है दास बन जाएं? दास्याभक्ति क्या है? कैसे हम धन्यवाद भाव में जीएं। कैसे हम अहोभाव में जीएं। योग्यता तो हमारी कुछ नहीं है, लेकिन परमात्मा हमें इतना दिये जा रहा है, उसके प्रति पल–प्रतिपल धन्यवाद का भाव।

एक बार की बात है। एक राजा और मंत्री की बचपन की दोस्ती थी। और दोनों एक दूसरे को बहुत प्रेम करते थे। वे दोनों जंगल चले गये शिकार खेलने। वे शिकार खेलते–खेलते काफी दूर निकल गये। उनके पास कुछ भी खाने को नहीं था, केवल एक फल उनके पास था। राजा ने फल काटा और हमेशा की तरह पहले मंत्री को दिया। राजा फल काटता जाए और मंत्री खाता जाए। राजा के हाथ में आखरी पीस बचा। उन्होंने सोचा कि आज इसे हो क्या गया है? इसने मुझे पूछा भी नहीं; मेरी फ्रिक भी नहीं की। राजा मंत्री

से नाराज हो गया और उसने मंत्री को आखरी पीस नहीं दिया। राजा ने फल स्वयं अपने मुंह में डाल लिया। वह फल इतना कड़वा था कि राजा ने उसे थूक दिया और मंत्री से कहा कि तुम कैसे इंसान हो? तुमने बताया क्यों नहीं? तुम इतना कड़वा फल खा रहे हो? मंत्री ने कहा कि तुमने जिंदगी भर मुझे इतने मीठे फल खिलाए, अगर आज एक कड़वा फल आपके हाथ से खा लिया तो कैसे बताऊं कि यह कड़वा है। यही है दास भक्ति। जो दास भक्ति में जीता है, वही कृष्ण पद को पाता है।

बौन पोड़े तो शौबाई दैखे।
मोनेर आगुन केबा दैखे
आमार रौशोराज चोइतोन्यो बोइ।
गोपीर एमोनि दौशा ओकि मौरोन दौशा
औबोध लालोन रे तोर शे भाब कोई–

वन जलता है तो सब कोई देखते हैं लेकिन मेरे अंतर की अग्नि किसी को नहीं दिखता। मेरे तो रसराज चैतन्य ही सब कुछ हैं। गोपियों की कृष्ण के बिना जिस प्रकार मरणासन्न दशा हो गई थीं वैसी ही दशा मेरी भी हो गई है। संत लालन कहते हैं गोपियों जैसी भावदशा तेरी कब होगी?

वन की अग्नि तो सब को दिखाई देती है। प्रेम परम यज्ञ है। ये जो बाहर के यज्ञ हैं, उसमें हम घी डालते हैं, अनाज डालते हैं, यह तो प्रतीक है। असली यज्ञ तो प्रेम का यज्ञ है। यह जीवन एक विरह की वेदी बन जाए, विरह की चिता बन जाए; उस दिन परमात्मा अमृत बनकर हमारे जीवन में बरस पड़ता है। ऐसे महायज्ञ में जो जीता है, प्रेम के यज्ञ में, उसके जीवन में परमात्मा की बरसात होती है। परमात्मा का प्रसाद उतरता है।

जैसे कोई बीज टूटे तो वृक्ष बनेगा। लेकिन बीज को डर लगता है, बीज को लगता है क्या पता क्या होगा मेरा? टूटने से तो सब डरते हैं। ऐसे ही अहंकार डरता है मिटने से, मिटने नहीं देता। अहंकार अपने आपको खाक नहीं होने देता। जिस दिन हम खाक हो गये, उस दिन हम परमात्मा हो गये। लालन कहते हैं कि मेरे भीतर जो विरह की अग्नि है, यह तो किसी को दिखाई नहीं देती। मेरी दशा तो गोपियों जैसी हो गयी है। जैसे वे कृष्ण के बिना मरणासन्न हो गयीं थीं, ऐसे ही मैं भी उनके बिना इसी भाव में रहता हूं। अगर कृष्ण को पाना है तो गोपी जैसी भावदशा चाहिए; तब कृष्ण मिल सकते हैं। पुराने शास्त्रों में राधा का कोई नाम नहीं है। यह लिखा गया है कि एक गोपी है जो सदा कृष्ण की छाया की तरह रहती है। राधा नाम तो मध्य युग के संतों ने दिया है।

ऐसा बन जाना है कि हम इतने मिट जाएं। जिससे प्रेम करते हैं उसकी छाया ही हो जाएं, इतने मिट जाएं। यह है गोपी जैसी दशा; अपने आप को मिटा देना। अब यह सारी

जीवन की धारा अपने भीतर लौट गयी है। अपने भीतर जो कृष्णत्व छिपा है, उसके विरह में लगातार जीं रहे हैं। गोपी होते–होते, गोपी भाव में जीते–जीते एक दिन गोपी कृष्ण हो जाती है। एक दिन यह पार्थिव देह विलीन हो जाती है और रह जाता है केवल प्रकाश। यह प्रकाश ही कृष्ण स्वरूप है।

आइये परमगुरु ओशो को सुनते हैं–

'कृष्ण के प्रेम में, कथा है, सोलह हजार गोपियों की। संख्या तो सिर्फ असंख्य का प्रतीक है। लेकिन गोपियों के प्रेम को समझना जरूरी है, क्योंकि भक्त वैसी ही दशा में फिर पहुंच जाता है। कृष्ण का होना शरीर में आवश्यक नहीं है। यह तो भक्त का भाव है जो कृष्ण को मौजूद कर लेता है। कृष्ण के होने का सवाल नहीं है; ये तो हजारों गोपियों की प्रार्थनाएं हैं, जो कृष्ण को शरीर में बांध लेतीं हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

राधा कृष्ण के साथ ही नाचीं; मीरा को जरा भी तकलीफ न हुई, कृष्ण के बिना भी वैसा ही नाच नाचीं, और कृष्ण के साथ ही नाचीं। और अगर गौर करो, तो मीरा की गइराई राधा से भी ज्यादा मालूम पड़ती है, क्योंकि राधा के लिए तो कृष्ण सहारे के लिए मौजूद थे, मीरा के लिए तो कोई भी मौजूद न था। मीरा के भगवान तो उसके भाव का ही साकार रूप थे। मीरा के भगवान तो मीरा ने अपने को ही ढालकर बनाए थे, अपने को ही निछावर करके निर्मित किए थे।

कृष्ण मौजूद हो और तुम राधा बन जाओ, तुम्हारी कोई खूबी नहीं, कृष्ण की खूबी होगी। कृष्ण मौजूद न हों और तुम मीरा बन जाओ, तो तुम्हारी खूबी है, कृष्ण को आना पड़ेगा। भक्त खींचता है भगवान को रूप में। भक्त भगवान को गुणों के जगत में, पृथ्वी पर ले आता है।

कैसी थीं ब्रजगोपियों की भक्ति? एक क्षण को भी विस्मरण हो जाए तो रोती हैं। एक क्षण को भी कृष्ण न दिखाई पड़े तो तड़फती हैं। लेकिन ऐसा तो साधारण प्रेम में भी कभी हो जाता है– प्रेमी न हो, प्रेयसी तड़फती है; प्रेयसी न हो तो प्रेमी तड़फता है। फर्क क्या है ब्रज की गोपियों की भक्ति में और साधारण प्रेमियों की भक्ति में? फर्क इतना है कि ब्रजगोपियां कृष्ण के प्रेम में हैं, लेकिन परिपूर्ण होशपूर्वक कि कृष्ण भगवान हैं। वह प्रेम किसी व्यक्ति को प्रेम नहीं, भगवत्ता का प्रेम है। अन्यथा फिर साधारण प्रेम हो जाएगा।

कृष्ण को भी तुम ऐसे प्रेम कर सकते हो जैसे वे शरीर हैं, तुम्हारे जैसे ही एक व्यक्ति हैं। तब कृष्ण मौजूद भी हों तो भी तुम चूक गए।'

हरि ओम् तत्सत्।

बाईसवां प्रवचन

भक्ति है भगवान से युक्ति का उपाय

भोक्तीर दारे बाँधा आछे न सांई
हिन्दू कि जौबोन बोले
तार काछे जातेर बिचारनाइ।।
भौक्तो कोबीर जेते जोला,
प्रेम भोक्तीते मातोआला,
धोरेछे शेई ब्रोजेर काला
दिये शर्बोश्शो धौन तार।।
रामदाश मूर्ची एइ भौबेर पौरे
पेलो रौतोन भोक्तीर जोरे
तार शौर्गे शौदाई घौन्टा पौड़े
शाधुर मुखे शुनते पाई।।
ऐक चाँदे हौय जौगोत आलो
ऐक बीजे शौब जौन्मो होलो
फोकीर लालोन कौय मिछे कौल
कैनो कोरीश शौदाई।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

बाउल फकीर लालन शाह कहते हैं–

भोक्तीर दारे बाँधा आछे न सांई
हिन्दू कि जौबोन बोले
तार काछे जातेर बिचारनाइ

भक्ति की डोर से ही मेरे साँई बंधे हैं। हिन्दू या कि मुसलमान, उनके लिए जाति विचार कोई मायने नहीं रखता। भक्ति औषधि है, सारी बीमारियों की एक मात्र औशधि है। भक्ति भगवान से जुड़ने का उपाय है। हम भगवान से नहीं जुड़े, हम भगवान से टूट गए हैं, इसलिए दुखीं हैं, पीड़ित हैं, बेचैन हैं। सारी पीड़ाओं का मूल, हम परमात्मा से टूटकर जी रहे हैं। हम जुड़ गए हैं धन से और टूट गए हैं ध्यान से। हम जुड़ गए हैं पद से और टूट गए हैं परमात्मा से। हम जुड़ गए हैं देह से और टूट गए हैं आत्मा से। इसलिए हम इतने दुखी हैं और पीड़ित हैं।

भोक्तीर दारे बाँधा आछे न सांई

अगर परमात्मा से जुड़ना है तो एक डोर है– वह डोर है भक्ति। उससे बंधकर परमात्मा चला आता है। यह जोड़ कैसे हो? प्रकृति ने हमारे भीतर एक तत्त्व दिया है जुड़ने का; उसका नाम है प्रीति। इस प्रीति में सब जीते हैं; प्रीति के बिना कोई जी ही नहीं सकता। यह बात और है कि यह प्रीति किसी की धन से लगी हुई है; किसी की पद से हो गई है; किसी की यश से हो गई है प्रीति; लेकिन यह प्रीति कहीं न कहीं लगी हुई है इसलिए हम जिंदा हैं। हमने प्रीति से तादात्म्य बनाया है और जिसके जीवन में प्रीति टूट जाए, वह मरने के लिए तैयार है; मिटने के लिए तैयार है; जीना मुश्किल है।

ऐसा समझो जैसा यह शरीर श्वास लेता है तभी जिंदा है; ऐसे ही यह प्रीति आत्मा की श्वास है। इसके बिना हम जिंदा नहीं रह सकते। लेकिन इस प्रीति को हमने गलत से जोड़ दिया है। क्योंकि प्रीति एक ऐसा रसायन है, प्रीति एक ऐसा रूपांतरकारी तत्त्व है कि यह जिससे लगती है हम वैसे हो जाते हैं। मानों अगर हमारी प्रीति धन से लगती है तो हम धनी होकर मरते हैं। अगर हमारी प्रीति किसी फकीर से लगती है, किसी संत से लगती है तो हम संतत्त्व को उपलब्ध होकर मरते हैं। प्रीति को दिशा देनी है।

प्रीति के चार रूप हैं– एक प्रीति है जो अपने से छोटों से लगी हुई है, उसका नाम है स्नेह। एक प्रीति अपने से बाराबर वालों से लगी हुई है–पत्नी से, भाई–बहन, मित्र यह प्रेम है। यहां तक तो सारा संसार जीता है। लेकिन एक प्रीति है जो अपने से बड़ों से लगती है जैसे– गुरु। इसे हम श्रद्धा कहते हैं। यह श्रद्धा किसी–किसी को होती है। श्रद्धा में जीना बड़ा मुश्किल होता है। क्यों? क्योंकि अब प्रीति को पहाड़ चढ़ना पड़ा। क्योंकि उसकी नजरे

शिखर से टकराई। अब बड़ा रूपांतरण होने वाला है। इस प्रीति में मिटना होगा; पतंगे को शमा में जलना होगा। और फिर ऐसा रूपांतरण होता है कि भक्त एक दिन भगवान ही हो जाता है। इस प्रीति को सही दिशा दे दो। यह प्रीति हमारी भक्ति बन जाए तो बात बन जाएगी। परमात्मा से जोड़ हो जाएगा और जीवन में आनंद और प्रेम बरस जाएगा। जीवन का उद्देश्य मिल जाएगा।

भौक्तो कोबीर जेते जोला,
प्रेम भोक्तींते मातोआला,
धोरेछे शेई ब्रोजेर काला
दिये शर्बोश्शो धौन तार–

भक्त कबीर जाति के जुलाहा थे लेकिन प्रेम और भक्ति में मतवाले होकर अपना सर्वस्व देकर ब्रज के बाला को भक्ति के डोर में बाँध लिए थे। कबीर साहब कहते हैं–

'जात जुलाहा मत का धीर, सहज सहज गुण रमै कबीर।'

कबीर कहते हैं कि हम तो जाति के जुलाहा हैं और हमारी बुद्धि भी धीर, धीमी है, मंदी है। लेकिन हम सहज के साथ, परमात्मा के साथ, उसकी याद में जीते–जीते हम भी सहज हो गए हैं। हममें भी परमात्मा के गुण आ गए हैं। ऐसा परिवर्तन आ गया; ऐसा चमत्कार हो गया है जीवन में। याद रखना, जाति–पाति चालाक मनुष्यों ने निर्मित की हैं, परमात्मा ने नहीं। इनका धर्म से नहीं, राजनीति से संबंध है। धर्म जोड़ता है, राजनीति तोड़ती है। यह राजनीति का काम है, धर्म का काम नहीं है।

एक बार एक फ्रैंच दंपति ने एक स्वीडिस बच्चे को गोद लिया। वे जब उसको घर लाए तो कुछ दिन बाद एक स्वीडिस टीचर उन्होंने लगाना चाहा। बोले कि हम स्वीडिस सीखना चाहेंगे। लोगों ने पूछा कि तुम स्वीडिस क्यों सीखोगे? उन्होंने कहा जब यह बच्चा बड़ा होगा, जैसे बोलना सीखेगा तो स्वीडिस बोलेगा। लोग हंसे कि क्या बच्चे की भी कोई भाषा होती है? बच्चे की भाषा न स्वीडिस है, न फ्रैंच है। उसकी भाषा तो मौन है। उसकी भाषा तो शून्य है। शून्य से वह सीखता है, सामने का जो परिवेष है वह वही सीख जाता है।

न कोई स्वीडिस पैदा हुआ, न कोई फ्रैंच, न कोई हिंदू न कोई मुसलमान न कोई जाति का जुलाहा। कोई भी जात लेकर पैदा नहीं हुआ। लेकिन यह मनुष्यों ने निर्मित की है। अगर हम किसी के ब्लड का सेंपल लें तो क्या उस ब्लड में कोई जात आती है? बिल्कुल नहीं। या किसी हड्डी को देखें या एक्सरे लें, मालूम न हो कि किसकी है तो कैसे पता चलेगा कि यह हड्डी हिन्दू की है या मुसलमान की। ये जातियां तो हमने बनाई हुई हैं।

एक बार शेख फरीद को किसी ने एक सोने की कैंची भेंट दी। शेख फरीद ने उस कैंची को हाथ में लिया और कहा कि संतों के लिए कैंची का क्या काम है? संतों का तो

सुई–धागा का काम है। संत तो जोड़ता है, काटता थोड़ी है। धर्म जोड़ता है, तोड़ता नहीं है। जाति–पाति तोड़ती है। और जब ये जाति–पाति निर्मित हुईं तो नुकसान यह हुआ कि जो निम्न जाति के लोग थे उनकी हिम्मत ही नहीं हुई कि वे परमात्मा तक पहुंच सकते हैं। ऐसी निम्नता हमने उनके भीतर भर दी। जो उच्च जाति के लोग हैं, वे अहंकार से फूले रहे। उन्हें कोई जरूरत ही नहीं परमात्मा की। वह अहं भाव में खो गए और दूसरे निम्म भाव में खो गये। दोनों को नुकसान हो गया। इस जाति–पाति ने लोगों का इतना नुकसान किया।

रामदाश मूचीं एइ भौबेर पौरे
पेलो रौतोन भोक्तीर जोरे
तार शौर्गे शौदाई घौन्टा पौड़े
शाधुर मुखे शुनते पाई–

रामदास इस संसार में आकर मोची का काम करते हुए भी भक्ति के जोर से राम रतन–धन पाये थे। स्वर्ग में भी उनकी सदा चलती थी समस्त साधु गण सदा उनके प्रेम–भक्ति के गुणगान करते लेकिन भक्त रामदास राम रतन–धन में मतवाले थे– जिससे प्रेम करते हो, वैसे हो जाते हो।

प्रभुजी तुम संगति सरन तिहारी।
जग–जीवन राम मुरारी।।
संगति के परताप महातम, आवै बास सुबासा।।

प्रभु जी तुम्हारी संगत में हमारा जीवन ही बदल गया। हम तो मुरारी के संगत में राम ही हो गए। तुम्हारी संगत से हमारे अंदर भी सुवास आने लगी है। जैसे कि चंदन के पेड़ के पास अगर दूसरे पेड़ हों, साधारण पेड़ उसमें भी खुशबु आने लगती है। ऐसे ही जो परमात्मा की याद में जीता है, उसके सुमिरन में जीता है, उसे भीतर भी ऐसा ही प्रताप छा जाता है।

जाति भी ओछी करम भी ओछा,
ओछा कसब (पेशा) हमारा।
नीचै से प्रभु ऊंच कियो है,
कहि रैदास चमारा।।

रविदास कहते हैं– हम तो नीच जाति के थे, तुमने हमें ऊंचा कर दिया। संत बना दिया। हम तो बिल्कुल नीचे से नीचे थे। लेकिन तुम्हारी संगत में प्रभु हम तो ऊंचे हो गए। ब्रह्म ही हो गए, भगवान ही हो गए; संत हो गए। जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं है, जिसने ब्रह्म को जाना वह ब्राह्मण होता है। जन्म से तो सभी शूद्र पैदा होते हैं। लेकिन जिसका दोबारा जन्म हो जाए, ब्राह्मण को द्विज कहते हैं– दोबारा जन्मा, ट्वाइस बॉर्न। एक जन्म है शरीर का जो

माता–पिता ने दिया, एक और जन्म गुरु देता है–आत्मा का जन्म। जब हमारा दूसरा जन्म होता है और हम जानते हैं कि हम ब्रह्म हैं। अपने ब्रह्म स्वभाव को जब हम जानते हैं उस दिन हम द्विज हुए। उस दिन हम ब्राह्मण हुए।

ऐक चाँदे हौय जौगोत आलो
ऐक बीजे शौब जौन्मो होलो
फोकीर लालोन कौय मिछे कौल
कैनो कोरीश शौदाई–

एक ही चांद से जगत प्रकाशित होता है। एक ही बीज से संसार बना है। संत लालन कहते हैं– मिथ्या ही यह लड़ाई है। उसी एक आदि नाम से ही यह संसार चल रहा है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, हम परमात्मा को व्यक्ति की तरह मानते हैं। परमात्मा है सभी व्यक्तियों के भीतर कार्य कर रही शक्ति। वह शक्ति परमात्मा है।

ओशो कहते हैं– भगवान शब्द की जगह भगवत्ता शब्द ज्यादा उचित है। भगवत्ता क्या है? सारा जगत भगवत्ता से ओत–प्रोत है। एक छिपी हुई शक्ति, एक छिपी हुई इंटेलीजेंस; जिससे कि सारा जगत चल रहा है, उसका नाम भगवत्ता है। भगवान को पूजना नहीं है। देवी देवताओं की पूजा नहीं करनी है। भगवत्ता को जगाना है। रोम–रोम में दिव्यता कैसे भर जाए, पूरी प्रकृति में दिव्यता को कैसे पीएं; यह है भक्ति की कला। आइए, सुनते हैं कि परमगुरु ओशो इस संबंध में क्या कहते हैं–

'आमतौर से लोग समझते रहते हैं कि भगवान कोई व्यक्ति है, जिससे हमारा मिलन होगा, जिसका हम साक्षात्कार करेंगे। यह बिल्कुल ही असत्य है। भगवान कोई व्यक्ति नहीं है, जिससे आपकी मुलाकात होगी और आप कोई इंटरव्यू लेंगे। भगवान एक अवस्था है। जैसे ही आप उस अवस्था के करीब पहुंचेंगे, आप भगवान होते जाएंगे। जिस दिन आप उस अवस्था में पूरे डूब जाएंगे, आप भगवान हो जाएंगे। वहां कोई बचेगा नहीं, जिससे आप मुलाकात लेंगे। आप ही हो जाएंगे।

भगवान के दर्शन का अर्थ भगवान हो जाना है, क्योंकि भगवान एक पद है, वह एक अवस्था है। वह चेतना की आखिरी ऊंचाई है। वह आपके भीतर ही छिपे हुए बीज का आखिरी रूप से खिल जाना है। वह जो छिपा है, उसका प्रगट हो जाना है। तो भगवत्ता एक अवस्था है। इसलिए अच्छा है, भगवान शब्द से भी ज्यादा अच्छा शब्द है भगवत्ता, क्योंकि उससे अवस्था का पता चलता है, न कि व्यक्ति का– दिव्यता, गॉडलीनेस। गॉड, ईश्वर कहने के बजाय, भगवान कहने के बजाय, ब्रह्म कहने के बजाय– भगवत्ता, ब्रह्मपद।

लेकिन आदमी की कठिनाई है। क्योंकि आदमी की जो भाषा है, वह सभी चीजों को प्रतीक में, संकेत में बदल लेती है। हम सभी चीजों को बदल लेते हैं। अभी भारत में आजादी

की लड़ाई चलती थी तो घर–घर में फोटोएं टंगी थीं भारतमाता की। वह कहीं है नहीं लेकिन फोटोएं टंगी थीं– माता के पैरों में जंजीरें पड़ी हैं, हाथ में तिरंगा झंडा है। भारतमाता! और भारतमाता की जय बोलते–बोलते अनेक भूल गए होंगे कि भारतमाता जैसा कोई कहीं कुछ है नहीं। प्रतीक है। प्रतीक प्यारा है, काव्यात्मक है, लेकिन तथ्य नहीं है।

भगवान भी बस प्रतीक है। वहां कोई बैठा हुआ भगवान नहीं है। आप ही हो जाएंगे। इसलिए भगवान की खोज असल में भगवान होने की खोज है। और जब तक कोई भगवान न हो जाए, तब तक जीवन में यह खोज जारी रहती है। रहेगी ही, क्योंकि इसी की तलाश है, इसी की प्यास है।

जैसे बीज जमीन में पड़ा हो तो तड़पता है, कि वर्षा हो तो फूट जाए, अंकुरित हो। रास्ते में कंकड़–पत्थर पड़े हों तो उनको भी, कोमल–सा बीज उनको भी हटाकर या उनसे बचकर निकलने की कोशिश करता है। फूटता है, जमीन पर आता है, उठता है आकाश की तरफ। और जब तक फूल न खिल जाएं, तब तक बीज की दौड़ जारी रहती है।

आदमी भी एक बीज है। कहें कि वह भगवान का बीज है। भगवत्ता का बीज है। और जब तक टूटकर भगवान का फूल न खिल जाए, तब तक बेचैनी जारी रहेगी। यह बेचैनी सृजनात्मक है, क्रिएटिव है। इस बेचैनी के बिना आप तो भटक जाएंगे। इसलिए धन्य हैं वे जो आध्यात्मिक बेचैनी से भरे हुए हैं।'

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

तेइसवां प्रवचन

भक्ति ही देती है तृप्ति।

आमार हौय नारे मोनेर मौतो मोन
आमीं जानबो कि शे रागेर कौरोन।।
पोड़े रिपू–इन्द्रियेर भोले
मोन बैड़ाय रे डाले–डाले,
एबार दू मोने ऐकमोन होले
ऐड़ाई शौमोन।।
एबार रोशिक भौक्तो जारा,
मोने मोन मिशालो तारा,
(एबार) शाशोन कौरे तिनटी धारा
पेलो रौतोन।।
किशे–हौबे नागिनी बौश,
शाधबो कौबे औमृतो–रौश,
दौरबेश शिराज साँई कौय बिषेते नाश
होली लालोन।।

मेरे प्रिय आत्मन्,

नमस्कार!

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

आमार हौय नारे मोनेर मौतो मोन

आमी जानबो कि शे रागेर कौरोन।।

पोड़े रिपू–इन्द्रियेर भोले

मोन बैड़ाय रे डाले–डाले,

एबार दू मोने ऐकमोन होले

ऐड़ाई शौमोन।।

हाय! मेरा मन क्यों पवित्र नहीं होता, जिससे मैं उस अनुराग–भक्ति को अनुभव कर सकूं। रिपुओं के भ्रम में पड़कर डाल–डाल पर डोलता फिरता हूं। मेरा दो मन कब एक में समायेगा? कब यह ज्वाला शांत होगी?

एक व्यक्ति अपनी इष्ट देवता की बहुत पूजा–अर्चना करता था। इष्ट देवता उस पर प्रसन्न हो गए और उसको दर्शन दे दिये। इष्ट देवता ने कहा– वत्स मांगों तुम्हें क्या मांगना है? मैं तुम्हें तीन वरदान देता हूं। वह व्यक्ति अपनी पत्नी से बहुत परेशान था, बहुत त्रस्त था। उसने कहा कि सबसे पहले मेरी झगड़ालू पत्नी मर जाए। जैसे ही उसने पहला वरदान मांगा तो पत्नी तुरंत गिरी और खत्म हो गयी। उसने देखा कि पत्नी तो मर गयी लेकिन बच्चे चीखने–चिल्लाने लगे। उसको सारी समस्याएं सामने दिख गयीं। अब इन बच्चों को कौन पालेगा, कौन खाना बनाएगा, कौन घर संभालेगा? वह अभी सोच ही रहा था कि उसको दूसरा वरदान मांगना पड़ा। उसने दूसरा वरदान मांगा कि मेरी पत्नी जिंदा हो जाए। थोड़ी ही देर में उसकी पत्नी जिंदा हो गयीं

तीसरा क्या मांगे, बेचारा सोचते–सोचते वह पागल हो गया, कि यह मांगू तो वह छूट जाएगा, वह मांगू तो दूसरा छूट जाता है। कुछ भी जीवन में ऐसा नहीं है, जिसका विषम पक्ष न हो। और वह सोचता ही जा रहा है और अभी तक भी सोच रहा है। तीसरा वरदान मैं कैसे मांगू जिसका कि दूसरा पक्ष न हो। सब कुछ मेरे मन के मुताबिक हो।

हमारी भी हालत ऐसी ही है। अगर हमारे सामने हमारे इष्ट प्रकट हो जाएं तो हम भी वही करेंगे। एक बार तुम अपनी लिस्ट बनाना, तीन बातें मांगना। लेकिन उन तीन बातों से तुम भी इसी द्वंद्व में पड़े रह जाओगे कि यह मांगू या वह मांगू और आखिर में हम बहुत

ही क्षुद्र मांगते हैं।

हमारे सारे तपस्वी, व्रत करने वाले, उपवास करने वाले, क्या मांगते हैं परमात्मा से? संसार की क्षुद्र बातें ही तो मांगते हैं। यह कभी नहीं मांगते की मांग ही विदा हो जाएं। ऐसी शांति आ जाए कि मन भटकना विदा हो जाए। यह कोई नहीं मांगता। यह मांग पूरी हो जाए, वह मांग पूरी हो जाए और हमेशा ही द्वंद्व में रहता है।

कश्ती में छेद है, सागर में आंधियां
आशा का जहर पी, सो रहा है आदमी।
कितने रोज आते हैं, कितने चले जाते हैं।
मौत से बेखबर काल, खो रहा है आदमी।

परमात्मा सामने आ जाए तब भी उसको अपनी मृत्यु याद नहीं आती है। उस समय वह अमृत नहीं मांगेगा। वह अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिए मांगता है।

रिपुओं के भ्रम में पड़कर डाल-डाल पर डोलता फिरता हूं। मेरा दो मन कब एक में समायेगा। जब तक आंख बाहर देखेगी, बाहर की कामना करेगी ये दो मन एक हो ही नहीं सकते। द्रष्टा और दृश्य का भेद रहेगा। जब यह आंख भीतर मुड़ जाए उस दिन ये दो मन एक हो सकते हैं। उस दिन द्वैत समाप्त होता है। उस दिन दृश्य और द्रष्टा का भेद समाप्त होता है और भीतर एक एकत्व की अनुभूति होती है।

यही मन संसार से जोड़ता है और यही मन परमात्मा से जोड़ता है। मन ही ले जाता मधुशाला और मन ही ले जाता है मंदिर। जिस मन से हम दुनिया में जाते हैं, उसी मन से हम भीतर आते हैं। जिस द्वार से हम बाहर गए उसी द्वार से तो हम भीतर आएंगे। कैसे यह मन भीतर लौट आए? जिस दिन यह भीतर लौटता है, द्रष्टा और दृश्य का भेद विदा हो जाता है और तब ये दो मन एक हो जाते हैं।

एबार रोशिक भौक्तो जारा,
मोने मोन मिशालो तारा,
(एबार) शाशोन कौरे तिनटी धारा
पेलो रौतोन।।

अब मेरा मन भक्ति के रस में डूब गया है। मेरा मन भी एक में स्थिर हो गया है। जैसे ही त्रिवेणी आकर मुझमें समा गई मैंने रतन-धन पा लिया है।

भक्ति ही वह बिन्दु है, जहां भक्त और भगवान का द्वैत मिटता है। जहां सब दुई मिट

जाती है। जहां दो पल, एक पल में बदल जाता है। ऐसी लीनता आती है, ऐसी शून्य दशा आती है। बाहर से देखो तो शून्य दशा है, रिक्त दशा है लेकिन भीतर से देखो तो वह पूर्ण दशा है। ऐसा भराव भीतर से; ऐसी गूंज जीवन में उतर आती है कि जीवन संगीत से भर जाता है, जीवन सुगंध से भर जाता है। जैसे एक बीज अंकुरित हुआ, फिर उसमें फूल लगे और उसमें फिर खुशबु आए; ऐसे ही भक्ति खुशबु की तरह है, भक्ति सुगंध की तरह है। ऐसी सुगंध है जिसके पार अब कोई चाह नहीं है। यह सुगंध ऐसी तृप्ति देती है कि सब कुछ मिल गया। अब भक्ति के पार कुछ भी नहीं है। केवल एक होने का अहसास, अखंडता का बोध, और वह मौज; वह भीतर का आनंद।

किशे–हौबे नागिनी बौश,
शाधबो कौबे औमृतो–रौश,
दौरबेश शिराज साँई कौय बिषेते नाश
होली लालोन–

अब नागिन को वश में करके अर्थात् रिपुओं को वश में करके उस परम अमृत रस को साधूंगा। लालन कहते हैं मेरे सद्गुरू सिराज सांई कहते हैं– विषय रस का नाश करके ही अमृत रस को पाया जा सकता है। सुंदरदास जी का यह पद है–

हमारैं गुरु दीनीं एक जरी।
कहा कहौ कछु कहत न आवै, अंम्रित रसहिं भरी।
यातें मोहिं पियारी लागति, लैकरि सीस धरी।

गुरु का दान अहोभाव के साथ। गुरु ने ऐसी जड़ी दी, ऐसी औषधि दी। वह औषधि क्या है, क्या कहुं उसके बारे में? भीतर ऐसा आनंद भर गया है लेकिन कुछ कहा नहीं जाता। ऐसा अहोभाव आ गया है कि कुछ बोला ही नहीं जाता। अमृत रस से भरी हुई है वह जड़ी और ऐसी प्यारी लगती है कि मैं क्या कर सकती हूं सिवाय नमन के! सिवाय अपने सिर पर रखने के और क्या कर सकती हूं।

परमगुरु ओशो ने सुंदर दास के इस पद को समझाते हुए कहा है– 'हमारे गुरु दीनीं एक जरी! क्या जड़ी बूटी दी, जिससे अमृत–रस की धार बही? मौन दिया, ध्यान दिया। विचार की ऊर्जा को भाव में रूपांतरित किया। भाव को भक्ति बनाया, फिर भक्ति अपने–आप भगवान हो जाती है। ऊर्जा तो यही है। जो तुम्हारे पास है, वही मेरे पास है। जो मेरे पास है, वही सब के पास है। ऊर्जा तो यही है। इसी ऊर्जा से तुम अपना दुःख

बना लेते हो, नरक ढाल लेते हो, इसी ऊर्जा से स्वर्गों की ईंटें भी रखी जाती हैं। इसी ऊर्जा से मोक्ष के सोपान भी रखे जाते हैं। यही ऊर्जा है।

यही ज़िंदगी मुसीबत, यही ज़िंदगी मसर्रत।
यही ज़िंदगी हक़ीक़त, यही ज़िंदगी फ़साना।।

यही जिंदगी एक कहानी होकर खत्म हो जाए या यही जिंदगी एक सत्य बनकर प्रकट हो। यही जिंदगी आनंद बन जाए या यही जिंदगी सिर्फ एक मुसीबत की लंबी कहानी!

जिससे पूछा मैं कि' दिल खुश है दुनिया में कहीं? '
रो दिया उनने और इतना ही कहा 'कहते हैं'।

कहते हैं कि कहीं लोग खुश होते हैं। देखा तो नहीं, सुना तो नहीं। आंख का अपना तो अनुभव नहीं है, साक्षात्कार तो नहीं हुआ, अफवाह सुनी हैं कि खुश लोग होते हैं। मगर देखे किसने? जब तुम्हें कोई आनंदित आदमी मिल जाए, जिसने अपनी जीवन-ऊर्जा को अमृत में ढाल लिया हो, तो पकड़ लेना उसके चरण, उसके पास जड़ी-बूटी है। जो उसके भीतर हुआ है वही राज तुम्हें भी दिया जा सकता है। वही सूत्र तुम्हें भी समझाया जा सकता है। गुरु का इतना ही अर्थ है। गुरु का अर्थ होता हैः जिसने पा लिया और अब निश्चिंत है। और जिसे पाने को अब कुछ शेष न रहा। जिसके जीवन में अब कोई प्रश्न नहीं है। जिसके जीवन में उत्तर ही उत्तर है। जिसकी कोई समस्या नहीं है। समाधान के बादल आ गए और बरस गए। समाधि फल गयी है। उसके चरण गह लेना। उसके पास उठना-बैठना, समागम करना। उसके पास से कुंजी मिल सकती है। जो पहाड़ों पर आता-जाता हो, उससे पहाड़ों का रास्ता पूछ लेना। जो जंगलों से जाता हो, गुजरता हो, उससे जंगलों का रास्ता पूछ लेना।

गुरु का और कुछ अर्थ नहीं होता- जिसके जीवन में परमात्मा घट गया है। गुरु साक्षी है इस बात का कि तुम्हारे जीवन में भी घट सकता है। और कुंजी बहुत कठिन नहीं है। एक बार हाथ में लग जाए तो बड़ी सरल है। कुंजी न हो तो ताले खोलना बड़ा कठिन है और कुंजी हो तो ताला खोलने से सरल और क्या बात है? कुंजी डाली कि ताला खुला! और कुंजी न हो हाथ तो तुम तालों को ठोकते रहो, पीटते रहो, हथौड़े मारते रहो- खतरा यही है कि कहीं ताला इतना न बिगाड़ लेना कि जिस दिन कुंजी भी हाथ लगे कुंजी भी काम न करे।'

यातें मोहि पियारी लागति, लैकरि सीस धरी।

मन–भुजंग अरन पंच नागनी सूंघत तुरंत मरी।।

ये जो मन रूपी सांप है और ये जो पांच इंद्रियां है ये सूंघने के साथ मर जातीं हैं। याद रखना, भीतर जो पवित्रता आतीं है, भीतर जो षट्रिपुओं का मरना होता है...। विषयों का नाश कैसे होता है? हम विषयों का नाश नहीं कर सकते। हमारा जीवन निकल जाएगा कोशिश करते–करते। जनम–जनम निकल जाएंगे पर बात नहीं बन पाती है। जैसे ही हमारे जीवन में यह ओंकार रूपी जड़ी आतीं है, हम पाते हैं कि हमारे भीतर एक ऐसीं औषधि गयीं जिस से ये सारे विषय समाप्त हो गये; सारे रोग विदा हो गए। अहंकार सबसे बड़ा रोग है। ये जो विषय हैं, सारे षट्रिपु इसीं के भाई–बहन हैं। तो अहंकार ही विदा हो जाता है। जब जीवन में ओंकार नहीं है तब अहंकार है। जिस दिन जींवन में ओंकार आता है, अहंकार विदा हो जाता है। दो चींजें एक साथ नहीं रह सकती हैं। जब तक अहं है तब ब्रह्म नहीं है। जिस दिन भीतर ब्रह्म आया, ओम् आया, उस दिन अहं चला गया।

भक्त की बात यहीं तो है। योगीं सोचता है कि कैसे मैं पवित्र हो जाऊं? पूरी कोशिश करता है, साधता है। तपस्वीं बहुत तपस्या करता है, तरह–तरह की मुद्राएं; तरह–तरह की तपस्यायें करता है। जब यह मन पवित्र हो जाए, भीतर षट्रिपुओं का नाश हो जाए, तभीं परमात्मा को पुकारा जाता है। लेकिन भक्त कहता है कि हम तो बच्चे की तरह हैं। जब तक एक बच्चा बिस्तर पर पड़ा हुआ है, और वह सोचे कि मैंने बिस्तर मैला कर दिया है; पहले मैं इस बिस्तर को साफ कर लूं तब मां को पुकारुंगा लेकिन अगर बच्चा ऐसा कुछ करे तो बिस्तर को और मैला कर देगा। भक्त कहता है कि भगवान जब तक तुम नहीं आए तब तक जींवन पवित्र हो ही नहीं सकता; षट्रिपु विदा हो ही नहीं सकते। तुम आ जाओ एक बार तो यह जीवन पवित्र हो जाए, यह जीवन निर्मल हो जाए, यह जीवन दिव्य हो जाए।

हरि ओम् तत्सत्।

चौबीसवां प्रवचन

सारे बंधन कर्ताभाव से

पारो निरौहेतु शाधोन कोरीते
जाओ रे छेड़े जौरामृत्यु नाइ जे देशोते।।
निरौहेतु शाधोक जारा
तादेर शाधोन खाँटि, जौबान खाड़ा
रूपेर भोल काटिये तारा
चोलेछे पौथे।।
मुक्तिपौथ तैजिये शौदाय
भोक्तिपौथे रेखो ह्रदौय,
शुद्धो प्रेमेर हौबे उदौय,
साँई राजी ताते।।
शुम्झे शाधोन कौरो भौबे,
एबार गैले आर कि हौबे,
लालोन बौले पोड़बी तौबे
लौक्खो जोनीते।।

मेरे प्रिय आत्मन्,

नमस्कार!

बाउल फकीर संत लालन शाह कहते हैं–

पारो निरौहेतु शाधोन कोरींते
जाओ रे छेड़े जौरामृत्यु नाइ जे देशेते।।
निरौहेतु शाधोक जारा
तादेर शाधोन खाँटि, जौबान खाड़ा
रूपेर भोल काटिये तारा
चोलेछे पौथे।।

ओ मन! अगर निर्हेतु किसी भी इच्छा को त्याग कर साधना कर सको तभी जरा–मृत्यु के पार जाओगे। आवागमन से छुटोगे।

इच्छाएं ही बंधन हैं, चाहे वे इच्छाएं मुक्ति की ही क्यों न हो? संसारी जब भक्ति करता है तो वह संसार चाहता है। और संन्यासि भक्ति करता है तो वह चाहता है कि उसे कैसे स्वर्ग मिल जाए, कैसे परमपद मिल जाए, कैसे मुक्ति मिल जाए, कैसे मोक्ष मिल जाए। चाह दोनों की हैं। इच्छाएं दोनों की हैं। एक की इच्छाएं सोने की जंजीरों जैसी हैं; दूसरे के इच्छाएं दिखती हैं लोहे की जंजीरों की तरह, लेकिन इच्छाएं दोनों की हैं। दोनों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण उपयोगितावादी है। दोनों की दृष्टि फल पर है। आनंदवादी दृष्टिकोण ही मुक्ति के पथ पर ले जाता है।

जैसे– हम फुटबॉल या कोई अन्य खेल खेल रहे हैं; हमें उसमें इतनी तल्लीनता आती है, इतना मजा आता है। लेकिन यह मजा है तल्लीनता का। अगर हम मजा लेने के लिए फुटबॉल खेलने लगे, तो पता चलता है कि हमें मजा नहीं आया। क्योंकि हम तल्लीन नहीं हो पाएंगे, क्योंकि हमारी दृष्टि फल पर है। कब आनंद आएगा, कब मजा आएगा और मजा कभी नही आएगा। आनंदवादी दृष्टिकोण हमें मुक्ति देता है। परमात्मा को भी लोग मुक्ति के साधन के रूप में चाह रहे हैं। भक्त का अर्थ होता है– जिसने अपना सब कुछ परमात्मा पर छोड़ दिया। अब तक जो कुछ हुआ, परमात्मा ने करवाया। अब तक जो कुछ हो रहा है परमात्मा करवा रहा है और आगे भी जो होगा वह परमात्मा करवायेगा। तेरी मर्जी पूरी हो। जीवन के सारे बंधन तो कर्ताभाव से हैं। जीवन से अगर कर्ताभाव

विदा हो जाए; आवागमन से तुरंत मुक्ति मिल जाएगी। अहंकार विदा हो जाएगा और आप अपने को मुक्त पाएंगे।

'जाति बरन कुल खोय के, भक्ति करै चित लाय।
कह कबीर सतगुरु मिलै। आवागमन नसाय।।'

एक चित्त होकर, तल्लीन होकर, सबकुछ छोड़कर अगर भक्ति में डूब गये तो आवागमन से तुंरत मुक्ति हो सकती है।

मुक्तिपौथ तैजिये शौदाय
भोक्तिपौथे रेखो ह्रदौय,
शुद्धो प्रेमेर हौबे उदौय,
साँई राजी ताते।

मुक्तिपथ की इच्छा त्यागकर ह्रदय में भक्ति भाव रखते हुए भक्तिपथ पर चलते ही शुद्ध प्रेम का उदय होता है और उसी प्रेम–भक्ति में सांई भी राजी रहते हैं। शुद्ध प्रेम जिसमें कोई मांग नहीं हैं। शुद्ध प्रेम जो अकारण है। भक्त क्या कहता है, भक्त तो चाहता ही नहीं कि मुक्ति हो। भक्त कहता है कि ऐसा कुछ मत कर देना प्रभु जिससे मुक्ति जो जाए। हमें मुक्ति नहीं चाहिए।

राता माता नाम का, पिया प्रेम अघाय
मतवाला दीदार का, मांगे मुक्ति बलाय।

तुम्हारी बला से हमें तो तुम्हारा दीदार होता रहे, यहीं हमारे लिए मुक्ति से बढ़कर है। भक्त कहता है यह बंधन बड़े प्यारे हैं– मुक्ति को छोड़ने तैयार है भक्त लेकिन प्रभु को छोड़ने तैयार नहीं है। भक्त कहता है–तुम अपनी मुक्ति संभालो! दे देना दुनिया में कई भिखारी हैं, जिन्हें मुक्ति चाहिए। हमें तो सिर्फ तुम चाहिए और कुछ नहीं चाहिए। हमारे लिए तो तुम ही काफी हो। हमें हजार–हजार बंधनों में बांध ले प्रभु! अपने प्रेम पाश में बांध ले। तू हमें प्रेम की यात्रा पर ले चल। और याद रखना, भक्त की मुक्ति हो जाती है। मुक्ति की भाषा भक्त की नहीं है। लेकिन भक्त की मुक्ति सुनिश्चित है। बिना मांगे घटती है। प्रेम में जीना ही मुक्ति है। ऐसे जीता है भक्त जैसे सब ओर प्रभु है। प्रीतम का पल–प्रतिपल स्मरण रहे। उठते–बैठते, सोते–जागते–

जहं जहं डोलूं सो परिकरमा, जो कुछ करूं सो सेवा।

जब सोवूं तब करूं दण्डवत, पूजूं और न देवा।

इसलिए संत लालन कहते हैं –

शुम्झे शाधोन कौरो भौबे,

एबार गैले आर किं हौबे,

लालोन बौले पोड़बी तौबे

लौक्खो जोनीते–

रे मन! जरा समझ बूझकर साधना करो इस बार अगर चूक जाओगे तो लाख–लाख योनियों में फिर भटकना पड़ेगा। एक समझ चाहिए साधना के प्रति।

जिस्म की बात नहीं है, अपने दिल तक जाना है।

लंबी दूरी तय करने में, वक्त तो लगता है।

थिंकिंग से हमें फीलिंग में आना है। फीलिंग में ही नहीं रह जाना है। फीलिंग एक जम्पिंग बोर्ड है, वहां से अपनी बींईंग तक आना है।

एक सम्राट ने नाराज होकर अपने वजीर को एक बहुत बड़ी मीनार के ऊपर कैद कर दिया था। एक प्रकार से यह अत्यंत कष्टप्रद मृत्यु दण्ड ही था। न तो उसे कोई भोजन पहुंचाया जाता था। और न उस गगनचुंबी मीनार से कूदकर ही उसके भागने की कोई संभावना थी। वह वजीर जब कैद करके मीनार की तरफ ले जाया जा रहा था, तो लोगों ने देखा कि वह जरा भी चिंतित और दुखी नहीं है, विपरीत, वह सदा की भांति ही आनंदित और प्रसन्न है। उसकी पत्नी ने रोते हुए उसे विदा दी और उससे पूछा कि वह प्रसन्न क्यों है! उसने कहा कि यदि रेशम का एक अत्यंत पतला सूत भी मेरे पास पहुंचाया जा सका, तो मैं स्वतंत्र हो जाऊंगा और क्या इतना–सा काम तुम नहीं कर सकोगी?

उसकी पत्नी ने बहुत सोचा, लेकिन उस ऊंची मीनार पर रेशम का पतला सूत भी पहुंचाने का कोई उपाय उसकी समझ में नहीं आया। उसने एक फकीर को पूछा। फकीर ने कहा, 'भृंग नाम के कीड़े को पकड़ो। उसके पैर में रेशम के धागे को बांध दो और उसकी मूछों पर शहद की एक बूंद रखकर उसे मीनार पर, उसका मुंह चोटी की ओर करके छोड़ दो।' उसी रात्रि यह किया गया। वह कीड़ा सामने मधु की गंध पाकर उसे पाने के लोभ में धीरे–धीरे ऊपर चढ़ने लगा। उसने अंततः एक लंबी यात्रा पूरी कर ली और उसके साथ रेशम का एक छोर मीनार पर बंद कैदी के हाथ में पहुंच गया।

वह रेशम का पतला धागा उसकी मुक्ति और जीवन बन गया। क्योंकि, उससे फिर सूत का धागा बांधकर ऊपर पहुंचाया गया, फिर सूत के धागे से डोरी पहुंच गई और फिर डोरी से मोटा रस्सा पहुंच गया और रस्से के सहारे वह कैद के बाहर हो गया।

ऐसे ही हमारा प्रेम संसार के बंधनों में, संबंधों में जकड़ गया है। उसे मुक्त करना है। कैसे मुक्त हो? इस प्रेम को राम–नाम के धागे से जोड़ना होगा। इस प्रेम को ओंकार के धागे से जोड़ना। धीरे–धीरे यह प्रेम परमात्मा के उस विराट आकाश में ले जाकर हमें मुक्त कर देता है। इसी का नाम भक्ति है। और यह भक्ति ही मुक्ति है।

आइये सुनते हैं कि इस विषय में परमगुरु ओशो क्या कहते हैं–

'दुनिया में दो ही ढंग हैं जीने के। अपने को याद करो, परमात्मा को भूलो– यह ढंग, कहो संसारी का ढंग। अपने को भूलो, परमात्मा को याद करो– दूसरा ढंग, कहो संन्यासी का ढंग। अपने को नंबर दो रखो और परमात्मा को नंबर एक, फिर देर न लगेगी– 'साहेब मिल साहेब भए'। अपने को नंबर एक रखो और परमात्मा को नंबर दो, तो तुम ही नास्तिक हो।

तुमने देखा आस्तिक भी मंदिर में प्रार्थना करने जाता है तो परमात्मा को नंबर दो रखता है, नंबर एक नहीं! वह परमात्मा से कहता है; जो मैं चाहता हूं, वह तू कर। वह यह नहीं कहता कि जो तू करे, वह मुझे स्वीकार। वह यह ही कहता कि तेरी मरजी में

स्वीकार, मैं आनंद से स्वीकार करने आया हूं। वह कहता है कि देखो, मेरे लड़के को नौकरी नहीं मिल रही, नौकरी लगवा दो। कि मेरी पत्नी बीमार है और मैं कितना भक्ति–भाव कर रहा हूं, सुनो सब कुछ, बहरे मत बनो, इसे ठीक कर दो। नंबर एक वह खुद ही है, परमात्मा की भी सेवा लेना चाहता है। मालिक वही है। मालिक अपने को समझ रहा है, परमात्मा का भी उपयोग करना चाहता है। यह आस्तिकता नहीं है।

आपा मेटि न हरि भजे, तेई नर डूबे।

हरि का मर्म न पाइया, कारन कर डूबे।

वही डूबता है, जो अपने को तो भूलता नहीं और परमात्मा को भूला रहता है। और इसीलिए डूबता है कि हरि का मर्म न पा सका। जिसने अपने को भूला और परमात्मा को याद दिया, उसकी बड़ी और गति है।

तुम रहो यदि साथ मैं, तो पार क्या, मझधार क्या है

हर लहर तट है मुझे तो, सिंधु की ललकार क्या है!

फिर भरे तूफ़ान में तुम, मेरी नैया, अपने करों से

प्रभु डुबाओ तो डुबा दो, अब मुझे अस्वीकार क्या है!

फिर तो परमात्मा अगर डुबाए भी, तो भी तट मिल जाता है।'

ओशो के इन अमृत–वचनों करे हृदंयगम किए हुए, समर्पण भाव में डूबे हुए हम विदा होते हैं।

धन्यवाद। शुभ रात्रि।

हरि ओम् तत्सत्।

पच्चीसवां प्रवचन

परम स्वतंत्रता है परमात्मा

हाय चिरोदिन पोषलाम
ऐक औचीन पाखीं।
पाखीं भेद पोरीचौय देय ना
मोरे ओइ खेदे झौरे आँखीं।।
पाखीर बूलीं शुनते पाई
रूप कैमोन देखीं ना भाई
आमी उपाय कोरी कि।
आमी चेनाल पेले चिने निताम
जेतो मोनेर धूकधूकीं।।
पोषा–पाखीं चिनलाम ना
ए लौज्जा तो जाबे ना
आमी बिषौन घोर देखीं
कोन दिन शाधेर पाखीं जाबे उड़े
धूलो दिये दूई चोखीं।।
पाखीं बोशे थाके खाँचाते
आछे नौय दौरजा ताते
जाय आशे शे कोन पौथे
आमाय दिये रे भेल्कि
दौरोबेश शिराज साँई कौय
बौय लालोन बौय
फाँद पेते ओइ शोम्मुखीं।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

बाउल संत लालन शाह गाते हैं–

हाय चिरोदिन पोषलाम ऐक औचीन पाखी
पाखी भेद पोरीचौय दैय ना मोरे ओइ खेदे झौरे आँखी।।

हाय! एक अन्जाने पंछी को पाला, जिसका भेद परिचय भी न जानूं यही सोच कर दुःख में मेरे दोनों नयन झरते हैं। बाउल गीत के मुख्य बिन्दु तीन हैं– पहला, देह प्रेम, शरीर के सम्मान से संबंधित बाउल गीत गाते हैं। दूसरा, शास्त्रों के खिलाफ, शास्त्र विरोधी गीत। तीसरा, गुरु भक्ति के गीत। यह जो गीत है– 'हाय चिरोदिन पोषलाम ऐक औचीन पाखी,' यह देह प्रेम से संबंधित है। बाउल के अनुसार यह जो देह है, यह एक पिंजड़ा है; खांचा है और इसके अंदर परमात्मा हवा की तरह आना–जाना करता है। परमात्मा रूपी अपरिचित पक्षी हवा की तरह आता–जाता है, और इसे जानने के लिए हमें सचेतन होना होगा; अवेयरनेस में जाना होगा; बोधपूर्ण होना होगा।

पाखी भेद पोरीचौय दैय ना मोरे ओइ खेदे झौरे आँखी।
भेद परिचय भी न जानूं यही सोच कर दुःख में मेरे दोनों नयन झरते हैं–

जिंदगी भर हम इसके साथ रहते हैं और हमारा परिचय नहीं हो पाता। क्योंकि हम अनअवेयर हैं; क्योंकि हम स्वयं के प्रति मूर्च्छित जीते हैं।

पाखीर बूली शुनते पाई
रूप कैमोन देखी ना भाई
आमी उपाय कोरी कि।
आमी चेनाल पेले चिने निताम
जेतो मोनेर धूकधूकी।।

जब–जब हमें लगता है कि हम परिचित हुए हैं किसी से; परिचय भ्रम है।

परिचय परिधि दृश्टि का दोष अहं का कुंठित दर्शन।
परिचय भ्रम की देह, अपरियच सहज चिरंतर।

जब–जब हमें लगा कि हम परिचय में हैं। जैसे तुम्हारी शादी हुई, सात फेरे हुए, पत्नी आई और ऐसा लगा कि हम परिचित हो गए हैं। पति से हम परिचित हो गए हैं। लेकिन जीवन भर रहकर क्या हम परिचित हो पाते हैं? हमें भ्रम लगता है कि हम परिचित हो गए हैं। लेकिन यह परिचय बिल्कुल ऊपर–ऊपर का है, ज्ञान नहीं है यह। और जब भी हमें लगा कि

हमने जान लिया तो निश्चित रूप से हमें जीवन में एक भ्रम खड़ा किया। हम सोचते हैं कि हमारा पुत्र पैदा हुआ, हमने उसका नाम रखा, नाम संस्कार किया, जनेऊ संस्कार किया, उसका मुंडन संस्कार किया, हम सोचते हैं कि हम उसे जानते हैं।

क्या हम उसे सच में जानते हैं? क्या हम जानते हैं कि उसकी आंखों से कौन सी निर्मल आत्मा झांक रही है। कौन सी निर्मल सत्ता झांक रही है। क्या हम उसके भीतर के कंटेट को जानते हैं, उस निराकार स्वरूप को जानते हैं? हमारी पहचान केवल कंटेनर से होती है, कंटेट से नहीं होती है। हमारी पहचान केवल देह से होती है, देह के भीतर जो विदेह रूपी परमात्मा है उससे कहां होती है। तो यही भ्रम है कि हमें पहचान हो गयी और इसी भ्रम में हम सारा जीवन जीते हैं और एक दिन दुखी रहते हुए मर जाते हैं। क्यों? क्योंकि वह तृप्ति नहीं मिलती हमें। वह जो अपरिचय का जो दुख है, वह बना रहता है।

ये कैसा अपरिचय है, अपनों से परायों से,
हम कितने अजनबी हैं, खुद अपने ही सायों से!
लगते हैं निकट लेकिन, दूरी नहीं है घटती
यह नेह क्षितिज रेखा, और–और परे हटती
मिटती नहीं मिटाये, हंसने से न आहों से
ये कैसा अपरिचय है, अपनों से परायों से।

चाहे अपने हों या पराये हों; अपने से ही परिचय नहीं है तो अपनों से क्या परिचय होगा? पहला परिचय तो अपने से होगा, स्वयं से होगा। जिस दिन स्वयं से परिचय हो गया उस दिन अपनों से भी परिचय हो जाएगा। वरना जिंदगी भर परिचय को ज्ञान समझने के भ्रम में जीओगे। अगर सच में परिचय करना है तो यह झूठे परिचय का जो भ्रम है, इस परिचय से पार जाना होगा। देह से पार, कंटेनर से पार जो सत्ता मौजूद है, उसकी ओर जाना होगा।

पोषा–पाखी चिनलाम ना
ए लौज्जा तो जाबे ना
आमी बिषौन घोर देखी
कोन दिन शाधेर पाखी जाबे उड़े
धूलो दिये दूई चोखी–

जिस पंछी को मैंने पाला उसे पहचान न सका, इस लज्जा से मैं मरा जाता हूँ। विषय घोर में पड़कर वह पंछी किसी दिन मेरी आँखों को धोखा देकर उड़ न जाए इसी चिंता में घुला जाता हूँ। पक्षी के बोल तो सुनाई देते हैं। भीतर जब शांत बैठोगे, बाहर के कोलाहल से दूर शांत अवस्था में जब बैठोगे तो बोल सुनाई देंगे पंछी के, भीतर एक नाद निनादित हो रहा

है। नाद गूंज रहा है, बोल सुनाई दे रहा है; लेकिन दिखाई नहीं दे रहा है कुछ। पक्षी के बोल सुनाई पड़ते हैं, लेकिन स्रोत नहीं पता चलता कि यह नाद कहां से आ रहा है। इसका स्रोत कहां है यह पता नहीं चलता और इसी लज्जा से मैं मरा जाता हूं यह पंक्षी किसी दिन आंखों को धोखा देकर उड़ न जाए। और इसी चिंता में घुला जाता हूं। निश्चित रूप से यह पक्षी एक दिन उड़ने वाला है।

एक बार की बात है, एक राजा ने एक बहुत सुंदर तोता पाला। जंगल गया था शिकार खेलने। बहुत सारे तोतों में से एक तोता उसे बहुत अच्छा लग गया। वह उसे पकड़कर घर ले आया और पाला। हीरे–जवाहरात से उसके पिंजड़े के सजाया। खूब सुंदर–सुंदर भोजन दिया। बड़ा प्रेम में पड़ गया। वह तोता हिंदी भाषा में बोलने लगा। हिंदी भाषा में बोलने लगा मनुष्य की तरह। राजा एक साल बाद फिर उसी जंगल जा रहा था। राजा ने तोते से कहा कि मैं तुम्हारे जंगल वापस जा रहा हूं, तुम्हारे मित्रों के पास जा रहा हूं। क्या तुम्हें कोई खबर देनी है, कोई संदेश देना है? तोते ने कहा कि कहना कि राजा मुझे बहुत प्यार करता है, और बहुत सुंदर खाने–पीने को मिलता है। बड़ी सुंदर व्यवस्था है और प्रेम भी करता है लेकिन स्वतंत्रता तो स्वतंत्रता है। राजा जंगल गया और उस तोते का संदेश अन्य तोतों को सुनाया कि राजा मुझे प्यार करता है, बड़ी सुंदर व्यवस्था है लेकिन स्वतंत्रता तो स्वतंत्रता है। सारे तोते एक–एक टपक गये जमीन पर और मर गये।

राजा ने सोचा कि इसने कैसा अशुभ संदेश दिया जिससे सारे तोते मर गये। बड़ा दुखी वापस लौटा। उसने उस तोते को आकर बताया कि तुमने क्या संदेश भेजा था, कि तुम्हारे सारे मित्र एक–एक करके मर गये। जैसे ही तोते ने यह सुना, वह भी छटपटाया और मर गया। राजा ने देखा कि तोता तो मर गया अब क्या करें? राजा ने उसको पिंजड़े से बाहर निकाला उसका अंतिम संस्कार करने के लिए; जैसे उसे पिंजड़े से बाहर निकाला तोता पिंजड़े से बाहर आकाश में उड़ गया।

यह जो पक्षी है इसको तो उड़ना ही है। यह स्वतंत्रता प्रेमी है, इसे इस खांचे से बाहर तो जाना ही है। इसके पहले कि यह खांचे के बाहर चला जाएं, इससे परिचय हो जाए। इससे वास्तविक परिचय होगा, तब पता चलता है कि जाना कहां रे? किसी दिन पिंजड़े के भीतर थे, अब बाहर हैं लेकिन वह जो है वह सदा–सदा है। फिर मृत्यु का भय विदा हो जाता है। पंछी किसी दिन मेरे आंखों को धोखा देकर उड़ न जाए इसी चिंता में घुला जाता हूं। जब तक उस अजन्में से परिचय नहीं हुआ, जब तक उस अमृत तत्त्व का पता नहीं चला, जब तक यही नहीं पता चला कि यह तो शाश्वत है और सदा–सदा रहेगा, न कहीं आता है और न कहीं जाता है और फिर भी आता है और जाता है। कई शरीरों में आता है, फिर चला जाता है, कभी इसे पिंजड़ा पसंद होता है, कभी इसे स्वतंत्रता पसंद होती है। ऐसा परिचय जिस दिन हो जाए उस दिन मृत्यु से भय विदा हो जाता है फिर चिंता में घुलने की बात नहीं है। इस

पिंजड़े में जब तक यह पंछी है तब तक ही पहचान हो सकती है। इसलिए जितनी जिंदगी है, यह जिंदगी बहुत मूल्यवान है, इससे महाजीवन की पहचान हो सकती है।

पाखी बोशे थाके खाँचाते
आछे नौय दौरजा ताते
जाय आशे शे कोन पौथे
आमाय दिये रे भेल्कि
दौरोबेश शिराज साँई कौय
बौय लालोन बौय
फाँद पेते ओइ शोम्मुखी–

पंछी जिस पिंजरे में रहता है उसके नौ दरवाजे हैं उसी पथ से वो मेरी आँखों को धोखा देकर निर्बाध रूप से आता–जाता रहता है। संत लालन कहते हैं, सद्‌गुरू का कहना है, जरा एक चित्त होकर उसके सम्मुख बैठो तभी उसे जान पाओगे। मन को शांत करके पलभर उसके सामने बैठने से ही वह जाना जाता है। एक चित्त होकर बैठो।

अभी हम बाहर निरंतर अटके हुए हैं। बाहर के जगत में हमारी ऊर्जा उलझी हुई है। जिस दिन हम एक चित्त होकर चौबीस घंटों में से एक घंटा अपने लिए निकालते हैं, एक घंटा जब हम बैठना शुरु करते हैं; तो शुरु में तो बाहर की छवियां आएंगी भीतर। बाहर के विचार, बाहर की परिस्थितियां जो भी हमने जिए हैं वे भीतर विचार के रूप में आएंगी। इसे हम अंतर्जगत कह लें। इसको देखते–देखते एक दिन हम इसके पार निकल आते हैं। जहां स्पेस है, जहां शून्य आकाश है। उस निराकार में जब हम निरंतर बैठते हैं; बैठते–बैठते एक दिन इस अजांने पंछी से, अपरिचित पंछी से पहचान हो जाती है।

देह के पार, मन के पार, उस शांत अवस्था में अपने निराकार स्वरूप में स्थित होने पर हमें एक दिन यह उत्तर मिल जाता है। जिसकी आवाज हम निरंतर सुन रहे थे उससे साक्षात्कार हो जाता है। सोचने–विचारने से, चिंतन–मनन से ऐसा होना संभव नहीं है।

कछुए की तरह सारी इंद्रियों को भीतर सिकोड़ लो। और जो अपने भीतर आती–जाती श्वास है, उस श्वास के डोर को पकड़ लो;

'अपजा जाप जपो भई साधो,
सांसों की कर लो माला।'

सांसों की माला बना लो और फिर सांसों के पार शांत निर्मल चैतन्य हमारा विराजमान है। उससे परिचय हो जाता है।

आइए, परमगुरु ओशो को सुनते हैं–

'सोच–सोच कर उसे कभी किसी ने पाया नहीं। सोच–सोच कर ही तो हमने उसे गंवाया है। जितना हम सोचते हैं उतने ही तो विचारों में हम खो जाते हैं। परमात्मा कोई

विचार नहीं है। वह कोई तर्क की निष्पत्ति नहीं है। वह कोई मस्तिष्क का निष्कर्ष नहीं है। परमात्मा तो सत्य है। तुम्हें सोचने का सवाल नहीं, देखना है। सोचने से क्या होगा? सोचने में तो और भटक जाओगे। आंख खोलनी है।

और अगर आंखें विचारों से भरी हैं, तो तुम्हारी आंखें अंधी रहेंगी। आंख निर्विचार चाहिए, तभी दर्शन उपलब्ध होता है। जिसको झेन फकीर कहते हैं, नो माइंड। जिसको कबीर कहते हैं, उन्मनी दशा। जिसको बुद्ध कहते हैं, चित्त का खो जाना। जिसको पतंजलि ने कहा है, निर्विकल्प समाधि। सब विकल्प और विचार जहां खो गए, वहीं नानक कह रहे हैं।

सोच-सोच कर भी हम उसे सोच नहीं सकते, यद्यपि हम लाखों बार सोचते रहें। चुप होने से भी उस मौन को उपलब्ध नहीं हुआ जा सकता, यद्यपि हम लगातार ध्यान में रह सकते हैं। तुम अपने को जबर्दस्ती कैसे मौन करोगे? तुम बैठ सकते हो। शरीर को साध सकते हो पत्थर की मूर्ति की तरह; भीतर मन उबलता रहेगा।

तुम जबर्दस्ती नमाज पढ़ लो, तुम जबर्दस्ती ध्यान कर लो, तुम जबर्दस्ती पूजा-प्रार्थना कर लो, क्या तुम कर रहे हो इसका कोई मूल्य नहीं है। क्या तुम्हारे भीतर चल रहा है? तुम पत्थर की मूर्ति की तरह बैठ जाओ, इससे क्या होगा? शरीर को साध लोगे, इससे क्या मन सधेगा? मन में तो वही चलता रहेगा जो चल रहा था। और भी जोर से चलेगा। क्योंकि जब शरीर काम में लगा था तो शक्ति बंटी थी। अब शरीर बिल्कुल निष्क्रिय है, सारी शक्ति मन को मिल गई। अब मन में और जोर से विचार उठेंगे।

इसलिए लोग जब भी ध्यान करने बैठते हैं तब ज्यादा विचार उठते हैं। पूजा करने बैठते हैं तब बाजार का बहुत ख्याल आता है। जब भी बैठते हैं, घंटी वगैरह बजाते हैं मंदिर में जा कर, तभी पाते हैं कि भीतर न मालूम क्या खराबी है! ऐसे सब ठीक चलता है। सिनेमा में बैठ जाएं, मौन आ जाता है। थोड़ी शांति हो जाती है। लेकिन मंदिर-मस्जिद में, गुरुद्वारे में बिल्कुल शांति नहीं। बात क्या है? सिनेमा तुम्हारी वासनाओं से संगत है, वहां वही जगाया जा रहा है, जो तुम हो। वहां वही उभारा जा रहा है, जो तुम्हारे भीतर भरा है। वही कूड़ा-करकट, वही कचरा! तुमसे तालमेल बैठ जाता है। मंदिर में कुछ ऐसी पुकार की जा रही है, जिससे तुम्हारा कोई तालमेल नहीं है। वहां सब गड़बड़ हो जाती है।

नानक कहते हैं, चुप होने से भी कुछ न होगा। उस मौन को नहीं पाया जा सकता। जितना हम सोचते हैं उतने ही तो विचारों में हम खो जाते हैं। परमात्मा कोई विचार नहीं है। वह कोई तर्क की निष्पत्ति नहीं है।'

धन्यवाद। हरिं ओम तत्सत्।

छबीसवां प्रवचन

मैं-मुक्त' आत्मा ही परमात्मा है

कौथा कौय रे देखा देय ना
नौड़े-चौड़े हातेर काछे,
खूँजले जौनोम भौर मेलेना
खूँजी तारे आसमान-जोमी
आमारे चिनिने आमी, एकि विषोम भूले भ्रोमी
आमी कोन जौन शे कोन जौना।।
राम कि रोहिम शे कोन जौन
माटी की पौबोन जौल कि हुताशौन
शुधाइले तार औन्बे शौन
मुर्खो देखे केउ बौलेना।।
हातेर काछे हौय ना खौबोर
कि देखते जाओ दिल्ली लाहोर
शिराजसाँई कौय, लालोन रे, तोर
शौदाय मोनेर भ्रौम जाय ना।।

मेरे प्रिय आत्मन्

नमस्कार।

बाउल फकीर शिराज साईं कहते हैं–

कौथा कौय रे दैखा देय ना
नौड़े–चौड़े हातेर काछे,
खूँजले जौनोम भौर मेलेना

उसकी आवाज सुनाई देती है लेकिन दिखता नहीं है। हिलता–डुलता है, पास में है, पर जनम भर खोजने से भी नहीं मिलता। एक बहुत प्यारी कविता है–

प्राण की अमराइयों में कोकिले से कूकते
कौन हो तुम जीवन में मधुरस सा घोलते
भाव–निर्झर से हृदय की घाटी में मचलते
शून्य के कुछ अर्थ अनुपम अनूठे खोलते
कौन हो तुम, आकाश–से विस्तीर्ण लगते
जिसमें पंख अपने खोल हम उन्मुक्त उड़ते
अभीप्सा की अग्नि निरंतर जल रही अंदर
अंतर्बीन से इक रागिनी सी गूंज़ रही भीतर
विश्व जगमग है इस आग से मैं जानता हूं
तुम्हारे राग से अनुराग को पहचानता हूं
पर तुम्हें जब खोजता हूं जग–जलधि में
थाह मिल पाती नहीं है किसी भी विधि में
राह मिल पाती नहीं, दिव्य मंजिल की मुझे
स्व निर्मित सृष्टि में ही प्रभु तुम कैसे छिपे?
एक अनबुझ राज–से वह कौन हो तुम?
जीवन में मधु–रस घोलते, कौन हो तुम?
प्राण की अमराइयों में कोकिले से कूकते

बाहर खोजने से राह नहीं मिलती। बाहर जीवन भर खोजो, राह नहीं मिलेगी। स्वयं के भीतर खोजना होगा। इस खोज की दिशा स्वयं के भीतर जाती है। अपनी अंतस्तल की सीढ़ियों से नीचे उतरना होगा। अपने ही चेतना के कुएं में जाना होगा। अपनी गहराइयों में झांकना होगा। आत्म परिचय ही उसका परिचय बन जाता है।

हमारे जीवन में वह जीवंत बैठा है लेकिन परिचय स्वयं से करना होगा। हमारे जीवन में वह चैतन्य की तरह बैठा है, लेकिन परिचय बाहर नहीं होगा; परिचय भीतर होगा; खोज

भीतर होगी। याद रखना, हम उसे खोज रहे हैं और वह भी चाहता है कि उसको खोजा जाए। उसे भी लेना–देना है कि हम उसे खोज पाएं। वरना यह खोज पूरी होती ही नहीं। कैसे हो सकता है कि एक क्षुद्र एक विराट को कैसे खोजेगा अगर वह चाहेगा नहीं तो; वह तो सक्षम है, वह ऐसा छिपता है कि हम कभी भी उसका अनुभव ही नहीं कर पाते।

हिन्दू कहते हैं कि यह जगत लीला है। लुका–छिपी का खेला है। जैसे एक पिता अपने बच्चे के साथ खेलता हुआ छिप जाता है। और ऐसा छिप जाता है कि बच्चा उसे खोज ले। ऐसे ही परमात्मा हमारे भीतर ही छिपा है ताकि हम उसे खोज लें। यह प्रेम की प्यास, यह आग दोनों तरफ बराबर लगी है।

उल्फत का जब मजा है कि वह भी हों बेकरार
दोनों तरफ हो आग बराबर लगी हुई।

दोनों तरफ आग बराबर लगी हुई है। वह चाहता है कि हम खोजें। इसलिए यह खोज बड़ी आसान है।

खूँजी तारे आसमान–जोमी
आमारे चिनिने आमी
एकि विषोम भूले भ्रोमी
आमी कोन जौन शे कोन जौना–

उसे आसामन–जमीन पर खोजता हूँ, स्वयं को भी अब तक जान न पाया। ऐसे विषय भूल में भरमाया हूँ कि मैं कौन हूँ और वो कौन है, यह भी न जान पाया। भीतर जाता हूं, पहचान ही नहीं पाता कि मैं कौन हूं और वो कौन है?

परमगुरु ओशो ने एक बहुत प्यारी कथा सुनाई है कि अहंकार को भ्रम हो गया है आत्मा होने का। यही भ्रम है। इसलिए मैं कौन हूं वह कौन है... कोई समझ ही नहीं पाता। कोई भेद नजर नहीं आता।

एक बार एक बादशाह शिकार खेलने गया। खेलते–खेलते अपने मित्रों से बिछड़ जाता है। दूर निकल जाता है। रात हो गयी, कहीं कोई रास्ता नजर नहीं आता। बहुत थका–मांदा, भूखा–प्यासा, उसे दूर एक झोपड़ी दिखाई देती है। उस झोपड़ी में वह जाता है। वह एक किसान का टूटा–फूटा घर था। वह गरीब किसान था। उसने देखा कि उसके घर एक अथिति आया है, उसने उसका स्वागत किया। उसने उसे अपनी टूटी–फूटी चारपाई दी। सीधे–साधे बिस्तर में उसे बिठाया। उसने सोचा कि सम्राट को भूख लगी होगी तो उसने सम्राट को रोटी खिलाई। खाना सादा था लेकिन सम्राट को पहली बार रोटी खाकर ऐसी तृप्ति मिली कि पहले कभी उसको भूख तो लगती नहीं थी क्योंकि भूख से पहले ही खाना मौजूद रहता है।

सम्राट को भूख का अनुभव ही कभी नहीं हुआ तो तृप्ति का अुनभव होना मुश्किल है। सम्राट प्यासा था। किसान ने जब उसको कुंए से ताजा पानी निकालकर दिया तो उसको ताजा पानी पीकर बहुत आनंद मिला। सम्राट को लगा कि इस किसान ने मुझे इतना आनंद दिया, मैं भी कुछ आनंद दूंगा। सम्राट को लगा कि किसान के तौर–तरीकों से पता चलता है कि यह अपने सम्राट को नहीं पहचानता नहीं। सम्राट ने सोचा कि इसे भी मैं कुछ आनंद दूं। यह सम्राट को नहीं पहचानता है, इसे मैं ऐसा आनंद दूंगा कि यह अपने सम्राट से मिल ले। सम्राट ने पूछा किसान से– तुम अपने सम्राट के बारे में जानते हो? किसाने ने कहा– मैंने तो कभी देखा नहीं है, लेकिन सुना है कि बहुत भले इंसान हैं, बहुत करूणावान हैं, बहुत प्यारे हैं।

सम्राट ने कहा कि चलो मैं तुम्हें तुम्हारे सम्राट से मिलाने ले चलता हूं। किसान ने कहा ठीक बात है; इसी बहाने मैं भी दर्शन करूंगा। आप जा रहे हैं तो मैं भी आपके साथ चलता हूं। सम्राट ने उस किसान को अपने घोड़े में बिठाया; रास्तें में किसान ने पूछा कि मैं तो राजधानी कभी गया नहीं हूं। राजधानी में बहुत लोग होंगे; राजा होगा, वजीर होगा, मंत्री होंगे; मैं कैसे पहचानूंगा कि कौन सम्राट है? सम्राट ने किसान से कहा कि जिस व्यक्ति के सामने लोग अपनी टोपियां उतार दें, झुकें, नमस्कार करें समझ जाना कि वही बादशाह है, वही सम्राट है।

दोनों चल पड़े, राजधानी अब करीब आने लगी। जैसे ही वे राजधानी के द्वार पर पहुंचे किसान ने देखा कि बहुत लोग आए हुए हैं राजधानी में। और सारे लोग अपनी पगड़ियां, अपनी टोपियां उतार–उतार कर इस धोड़े के सामने रख रहे हैं, जिसमें कि वे दोनों बैठे थे। सम्राट पीछे मुड़ा और बोला किसाने से कि कुछ समझ में आया? किसान ने कहा कि मुझे तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है। क्योंकि दो लोग पगड़ी नहीं उतार रहें हैं बाकि सब तो पगड़ी उतार रहे हैं। जो पगड़ी नहीं उतार रहे हैं, वह आप हैं और मैं हूं तो फिर सम्राट आप हैं या मैं हूं... कैसे पहचानूं मैं?

ऐसा ही भ्रम हो गया है। अहंकार और आत्मा इतने साथ–साथ हैं कि एक घोड़े पर सवार हैं, एक ही शरीर में रह रहें हैं। अहंकार को भ्रांति हो गयी है आत्मा होने की और इसीलिए परमात्मा से साक्षात्कार नहीं होता। परमात्मा से मिलन नहीं होता। 'दैखा देय ना' इसलिए वह दिखाई नहीं देता। इसलिए सुनाई तो पड़ता है, अनुभव तो होता है, लेकिन फिर समझ में नहीं आता। भ्रांति वैसी की वैसी खड़ी रह जाती है। पुराणों में कहानियां है कि देवताओं की छाया नहीं बनती। इतने शुद्ध हो गये हैं देवता, अहंकार विहीन हो गए हैं, इतने निर्मल हो गए हैं कि उनकी छाया नहीं बनती है। अहंकार विहीन दशा ही परमात्मा है।

राम कि रोहिम शे कोन जौन
माटी की पौबोन जौल कि हुताशौन

शुधाइले तार औन्बे शौन
मुर्खो देखे केउ बौलेना

वो राम है या रहीम है, माटी है या पवन है या जल या अग्नि है, क्या है वो जिसे मैं खोजता फिरता हूँ, मूर्ख जानकर कोई मुझे बताना भी नहीं चाहता।

आइए सुनें कि परमगुरु ओशो क्या कहते हैं–

'असली संन्यासी शाहों का शाह होता है, बादशाह होता है। उसके पास लाल होता है। उसके पास परमात्मा का हीरा होता है– 'खोजत हीरा को फिरै, नहीं पोत का दाम'।

लोग खोजते तो हैं हीरे को, मगर पास में पोत खरीदने के भी दाम नहीं; कांच के गुरिए खरीदने के भी दाम नहीं और हीरे खरीदने चल पड़ते हैं।

लोग पूछते हैं: ईश्वर कहां है? ईश्वर को कैसे पाएं? ईश्वर का प्रमाण क्या? ईश्वर को सिद्ध करें– 'खोजत हीरा को फिरै, नहीं पोत का दाम' और यह कोई भी नहीं पूछता कि मेरी सामर्थ्य क्या है कि ईश्वर को जानूं; मेरा अधिकार क्या है कि ईश्वर को जानूं; मेरी पात्रता क्या है कि ईश्वर को जानूं? सम्यक खोजी ईश्वर के संबंध में नहीं पूछता, पूछता है कि मैं कैसी पात्रता निर्मित करूं कि ईश्वर का अनुभव हो सके! मुझे पाठ दें कि मैं अपनी आंखों को कैसे धोऊं कि सारी धूल झड़ जाए और मैं देख सकूं उसे, जो है! मेरे हृदय को निखारने की कोई कीमिया दें, ताकि मेरे भीतर भी प्रेम प्रार्थना बन सके।

सच्चा खोजी परमात्मा की बात नहीं पूछता, अपनी पूछता है। दुर्दशा को अपनी कैसे रूपांतरित करूं, इस संबंध में पूछता है। यह नहीं पूछता कि परमात्मा है या नहीं; यह पूछता है कि यह मेरा अंधेरा कैसे कटे या यह मेरा अंधापन कैसे मिटे?

खोजत हीरा को फिरै, नहीं पोत का दाम।।
नहीं पोत का दाम, जोहरि की गांठ खुलावै।

पैसे नहीं हैं कांच के गुरिए खरीदने को और पहुंच जाते हैं जौहरियों के पास और चाहते हैं कि जौहरी खोल दें अपनी गांठ, दिखाएं अपने बहुमूल्य हीरे। शायद साधारण दुनिया में तुम जौहरी को धोखा दे भी दो, क्योंकि जौहरी कैसे समझेगा कि तुम्हारे पास दाम हैं या नहीं? तुम अगर जा कर पूछोगे कि भई, हीरों का क्या भाव है, तो जौहरी बेचारा बताने लगे। मगर परमात्मा के जगत के जो जौहरी हैं– तुम किसी गुरु को धोखा न दे पाओगे; तुम किसी बुद्ध को धोखा न दे पाओगे।'

परमात्मा दूर नहीं है, निकट से भी निकट है। चले कि भटके, रुके कि पहुंचे।
रुकूं तो मंजिलें ही मंजिलें हैं,
चलूं तो रास्ता कोई नहीं है।

क्रिया से परमात्मा नहीं मिलता है, अक्रिया से परमात्मा मिलता है। इस अक्रिया

को, इस ठहरने को बुद्ध ने ध्यान कहा है। और याद रखना, अक्रिया केवल देह की नहीं, मन की भी। भोगी भटक गए हैं तन को दौड़ा–दौड़ा कर और योगी भी भटक जाते हैं तन को ठहरा–ठहरा कर। क्योंकि तन तो ठहर गया है लेकिन मन नहीं ठहरा। इस तन में जो ऊर्जा जा रही थी, वह ऊर्जा भी बच गयी, अब वह ऊर्जा मन को मिलने लगी। अब यह मन और चंचल और दौड़ने वाला हो गया है। इसे और अतिरिक्त ऊर्जा मिल गयी। असली बात है कि तन भी ठहर जाए और मन भी ठहर जाए; सब कुछ ठहर जाए। इस मौन, इस शून्य, इस सन्नाटे में सारी आपाधापी से दूर परमात्मा की अनुभूति होती है– तन के पार, मन के भी पार।

हातेर काछे हौय ना खौबोर
कि देखते जाओ दिल्ली लाहोर
शिराज साँई कौय, लालोन रे, तोर
शौदाय मोनेर भ्रौम जाय ना–

वो तो मेरे पास ही रहता है, पर उसका पता मैं नहीं जानता। दिल्ली और लाहौर ढूंढ़ता फिरता हूँ। संत लालन कहते हैं– मन का भ्रम दूर होने से ही उसे पाया जा सकता है। भ्रम क्या है? वह 'मैं' युक्त आत्मा जीव है– यही अज्ञान है। यही भ्रम है। और ज्ञान क्या है? 'मैं' मुक्त आत्मा परमात्मा है– यही ज्ञान है। आत्मा को खोजने कहां जा रहे हैं? दसों दिशाओं में लोग भाग रहे हैं लेकिन आत्मा नहीं मिलेगी परमात्मा नहीं मिलेगा। एक दिशा संत बताते हैं; एक दिशा गुरु बताता है वह दिशा है ग्यारहवीं दिशा। और वह ग्यारहवीं दिशा हम स्वयं हैं। आप स्वयं हैं। स्व–अवस्था। सब खोजना छोड़कर बैठना सीखो। अपने भीतर मौन में जाकर पूछो कि 'मैं कौन हूं'। और फिर सब कुछ जब छूट जाता है, तब जो है उसके प्रति जागो। पहली बात रूको, फिर देखो। ग्यारहवीं दिशा अपने आप खुलती है। वह दिशा है स्पेस। वह दिशा है हमारा अंतर्आकाश। यहां उत्तर मिलता है, यह आकाश ही हमारी आत्मा है।

धन्यवाद। हरि ओम तत्सत्।

सताइसवां प्रवचन

जहां सद्गुरु है, वहां तीर्थ है

होरी के धोरबी जोदी आगे शोक्ती शौहाय कौर
पोरोमब्रोम्हो शेई होरी
मानुशेर हृदय बिहारी शेई औधोर।।
मूलाधारे जौगोत–माता,
शौहोस्रारे जौगोत–पिता,
दूइजौने कोरले ऐकोता
जौन्मो मृत्यु हौबे ना आर।।
तौन्त्रो–मौन्त्रो जौपे शौबे,
ताइ ते कि शेई जूगौल हौबे,
ता होले जोगी–ऋषि
रेचौक पूरौक कूम्भौक कैनो कौरे ओनिबार।।
गुरूर काछे आछे जाना,
ओ शौब कौथा कोइते माना,
तोबू प्राने शोज्झो हौय ना
गोसांई चोन्डी बौले शाधोन कोरबी कौबे आर।।

मेरे प्रिय आत्मन्,

नमस्कार!

बाउल फकीर गाते हैं–

होरी के धोरबी जोदी आगे शोक्ती शौहाय कौर
पोरोमब्रोम्हो शेई होरी
मानुषेर ह्रदय बिहारी शेई औधोर।।

यदि हरि को जानना है तो आत्मशक्ति जाग्रत करो। परमब्रह्म को जानने के लिए प्रबल शक्ति चाहिए। अधर रूपी कृष्ण बिहारी प्रत्येक मानुष ह्रदय में बसे हैं।

पश्चिम में दर्शन शास्त्र (फिलॉसफी) विकसित हुई, जिसकी पृष्ठभूमि है तर्क। परमात्मा क्या है? परमात्मा के बारे चिंतन–मनन। ऐसा समझो जैसे अमावस की रात है और अंधेरा कमरा है। उस अंधेरे कमरे में काली बिल्ली को खोजना है। काली बिल्ली है नहीं पर उसे ही खोजने जैसी बात है। पूरब में योग उत्पन्न हुआ और जिसकी पृष्ठभूमि है दर्शन। सवाल सत्य का नहीं है; सवाल आंख का है। परमात्मा तो हमारी परम खिलावट है। परमात्मा हमारे भीतर मौजूद है।

होरी के धोरबी जोदी आगे शोक्ती शौहाय कौर

हमें संकल्प शक्ति जगानी होगी। योग हमारी शक्ति को जगाता है। सारे चक्रों को जगाता है। योग से नाभि चक्र विकसित होती है– संकल्प शक्ति जागती है। योग से ह्रयद चक्र विकसित होता है जिससे श्रद्धा जागती है। योग से हमारा विशुद्ध चक्र खुलता है, जिससे विवेक पैदा होता है। योग से हमारा आज्ञाचक्र खुलता है, जिससे अंतर्दृष्टि जागती है और परमात्मा को देखा जाता है। जब तक हमारी ऊर्जा इससे नींचे है, तब तक हम संसार की ओर खिंचते रहते हैं। और जिस दिन हमारी ऊर्जा इस तीसरे नेत्र पर आ गयी, इसकी खिलावट हो गयी; यहां से परमात्मा का राज्य शुरु हो जाता है। यहां से परमात्मा के दर्शन की क्षमता पैदा होती है। हमारे ही चक्रों के खिलावट से जो ऊर्जा उत्पन्न होती है, उस ऊर्जा से 'होरी के धोरबी' – हरि का दर्शन किया जाता है। हरि को कैसे अनुभव में लाया जाये यह कला योग ने सिखाई।

एक बार की बात है, भगवान बुद्ध के पास मौलंकपुत्त नाम का एक भिक्षु आता है। वह बहुत सारे प्रश्न लेकर आया था। उसके मुख्य ग्यारह प्रश्न थे। वह बहुत ज्ञानी था। भगवान बुद्ध से उसने प्रश्न पूछा, भगवान बुद्ध ने कहा कि इसका उत्तर मैं तुम्हें दो साल बाद दूंगा। मौलकपुत्त ने कहा कि यदि आपको उत्तर नहीं पता है तो मना कर दीजिए मैं चला जाता हूं। बुद्ध ने पूछा कि तुम और लोगों के पास भी तुम गये होंगे, तो क्या उन्होंने तुम्हें उत्तर दिए? उसने कहा हां, सबने बिना किसी टाईम लगाए हुए उत्तर दिये।

बुद्ध ने पूछा कि क्या तुम्हें उत्तरों से समाधान मिल गया? क्या तुम तृप्त हो गए हो उन उत्तरों से? अगर तृप्त हो गए तो तुम यहां क्यों आये? मेरी शर्त है कि तुम दो साल बाद प्रश्न पूछना। आनंद पास में बैठा था, आनंद हंसने लगा और सोचा कि यह तो फंस गया। दो साल बाद तो निरुत्तर ही हो जाएगा; कोई प्रश्न नहीं बचेगा। हमारे सारे प्रश्न उद्विग्न चित्त की इजाद हैं। जब तक हम बेचैन हैं, जब तक हम उद्विग्न हैं, तब तक सारे प्रश्न हैं, सारी उथल-पुथल है। जिस दिन शांति आई प्रश्न गिर जाते हैं। प्रश्न गिरते ही भीतर शांति, मौन, चैतन्य, सच्चिदानंद का अनुभव होने लगता है। फिर प्रश्न नहीं रह जाते हैं। दो साल बीत गए। बुद्ध ने पूछा कि दो साल पूरे हो गये हैं मौलंकपुत्त, उत्तर नहीं चाहिए। मौलंकपुत्त भी हंसने लगा और चरणों में गिर गया, बस निरुत्तर हो गया और आनंद से भर गया। आनंद में नाचने लग।

मूलाधारे जौगोत-माता,
शौहोस्रारे जौगोत-पिता,
दूइजौने कोरले ऐकोता
जौन्मो मृत्यु हौबे ना आर।

मूलाधार में जगत माता और सहस्रार में जगत पिता के मिलन से जन्म-मृत्यु के पार जाया जा सकता है। मूलाधार को जगत माता क्यों कहा? मूलाधार यानि प्रकृति। यहां से हमारा जन्म होता है। इसलिए प्रकृति मूलाधार है और पुरुष सहस्रार है। यह जो शरीर है यह 'पुर' है। इसमें चैतन्य रूपी परमात्मा निवास करता है और सहस्रार में उसका वास है। मूलाधार विकसित कर दिया है प्रकृति ने, यहां प्रकृति का काम खत्म हो गया। आगे यदि हमें विकसित होना है, आगे जाना है तो हमें खुद का संकल्प चाहिए। अपने संकल्प से हमें आगे की यात्रा करनी होगी। एक वर्तुल पूरा करना होगा 'यिन और यान' के मिलन का। प्रकृति और पुरुष के मिलन का। जगत माता और जगत पिता के मिलन से जो एक वर्तुल पैदा होता है; एक ट्यूनिंग पैदा होती है। उस ट्यूनिंग की अवस्था में, उस मौन, शांत और परम ऊर्जामयी अवस्था में परमात्मा का अनुभव होता है।

तौन्त्रो-मौन्त्रो जौपे शौबे,
ताइ ते कि शेई जूगौल हौबे,
ता होले जोगी-ऋषि
रेचौक पूरौक कूम्भौक कैनो कौरे ओनिबार-

तंत्र मंत्र के जपने से वो परम मिलन सम्भव नहीं। तभी तो जोगी ऋषि रेचक-कुंभक, पूरक करते रहते हैं। मंत्र जपने से परमात्मा नहीं मिलता। कैसा मिलेगा परमात्मा? योग रास्ता बताता है- ऋषि रेचक करते हैं; रेचक मतलब है सांस का बाहर आना। पूरक यानि

सांस का भीतर आना। जब हम सांस बाहर छोड़ते हैं तब हमारी ऊर्जा जागती है। जब हम सांस को भीतर भरते हैं, तो उस भराव में विराट की अनुभूति होती है। उस ठहराव में जब हम कुंभक करते हैं...। ऊर्जा जाग गयी रेचक से, प्राणायाम से ऊर्जा को जगाया। कुंभक से जब हमने अपने भीतर सांस को रोका– उस ठहराव में, हम भीतर हरि का अनुभव कर सकते हैं। उस ऊर्जा के भरपूर वातावरण में हम आसानी से प्रभु का दर्शन कर सकते हैं। हम पाते हैं कि यह सांस भीतर आ रही है, सांस बाहर जा रही है; जैसे परमात्मा ही हम में सांस ले रहा हो।

सांस के माध्यम से परमात्मा हम में प्रतिपल प्रवेश कर रहा है; यह अनुभूति होती है। और न जाने कितनी अंतरंग, कितनी आंतरिक अनुभूतियां होती हैं। जब ऊर्जा जागकर सहस्रार पर आती है तब हम पूर्ण चैतन्य हो जाते हैं; सचेतन। साक्षीत्व का अनुभव होता है। यही साक्षी की अनुभूति हमें परम साक्षीत्व में ले जाती है। परमात्मा की अनुभूति में ले जाती है।

गुरूर काछे आछे जाना,
ओ शौब कौथा कोइते माना,
तोबू प्राने शोज्झो हौय ना
गोसांई चोन्डी बौले शाधोन कोरबी कौबे आर।

सद्‌गुरू के पास तुझे जाना होगा। वहीं से तुझे परम ज्ञान की प्राप्ति होगी। चण्डी दास कहते हैं जो बातें मुझे गुरू से प्राप्त हुई, उसे कहना मना है पर मेरा मन तरसता है कि जो वस्तु मुझे मिली है वह तुम्हें भी मिले। कब और साधना करोगे? सद्‌गुरू की शरण में जाओ। उनके पास जाने पर ही कृपा बरसेगी। वह परम वस्तु तुम्हें भी मिलेगी।

जब हमें आनंद मिलता है तो आनंद बंटना चाहता है। जब हम आनंदित हैं तो हम बांटना चाहते हैं। जब हम खुश होते हैं तो हम लोगों से मिलना चाहते हैं। और जब हम दुखी हैं तो हम सिकुड़ना चाहते हैं, अकेले हो जाना चाहते हैं। आनंद जब भीतर आता है साधना से, तो भीतर एक करूणा पैदा होती है। बुद्ध ने कहा कि समाधि का आवश्यक परिणाम है करूणा। अगर करूणा जीवन में नहीं आयी, बांटने का भाव नहीं आया तो समझना कि कहीं कुछ गलती हो रही है।

जब भीतर खिलावट आती है, जब भीतर समाधि फलित होती है, आनंद की अवस्था आती है तो हमें बांटने का भाव होता है कि हमने तो साधना कर ली है अब तुम कब साधना करोगे? हमें जो कुछ हुआ, हमें जो कुछ मिला, वह गुरु ने कहने और बताने के लिए मना किया लेकिन फिर कहने को मन कहता है। क्यों मना किया है गुरु ने?

'हीरा पायो गांठ गठियायो, बार–बार वाको क्यों खोले'

उसका भी कारण है? हमारे कहने से कोई समझेगा थोड़े! जब तक उस व्यक्ति को स्वयं वह अनुभूति न हो जाए। वह अनुभूति कैसे होगी? जब गुरु साधना का मार्ग बताएगा। जब वह खुद अनुभव करेगा तब बात बनेगी। इसलिए हीरा खोलने से बात नहीं बन सकती। जब तक करूणा भाव हमारे भीतर पैदा नहीं हुआ तब तक समझना हमारी साधना कहीं गलत दिशा में जा रही है। साधना हमारी अधूरी–अधूरी है।

आइये परमगुरु ओशो को सुनते हैं–
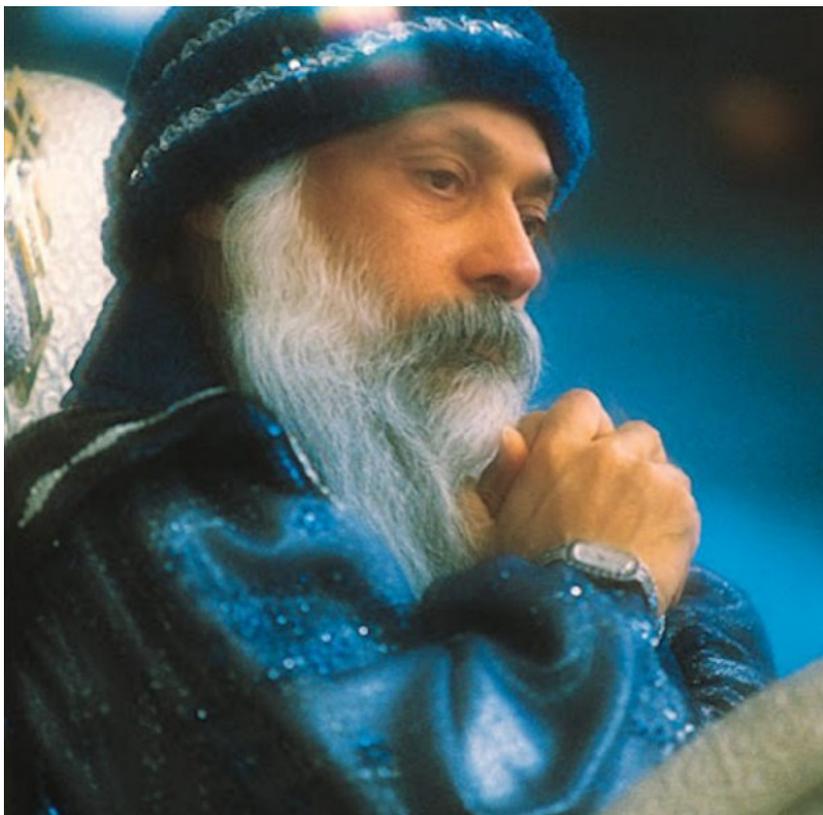
'परमात्मा को जो खोजता है, व्यर्थ खोजता है। जो सदगुरु को खोजता है, वह चकित हो जाता है। सदगुरु को खोजकर सदगुरु तो नहीं मिलता, परमात्मा मिलता है। और परमात्मा को जो खोजता है, उसे परमात्मा तो मिलता ही नहीं, सदगुरु भी नहीं मिलता है।

सदगुरु का इतना ही अर्थ हैः जो अभी देह में प्रगट हो रहा है– वह परमात्मा। जो अभी रूप में खड़ा, आकार में खड़ा– वह परमात्मा। अभी निराकार को तुम न पहचान सकोगे। अभी आकार से थोड़ी मैत्री बांधो। तुम्हारे पावन चरण की धूल; अभी किसी सदगुरु के चरणों की धूल बन जाओ। सब क्षम्य हो जाएगा।

भक्त करैं उपदेस, जगत को राह चलावैं।।

और धरै अवतार रहै तिर्गुन–संयुक्ता।

बड़ा प्यारा वचन है। पलटू कह रहे हैं, ऐसे तो सभी परमात्मा के अवतार हैं। क्योंकि आए हम वहीं से, उतरे हम वहीं से। हम सब उसके अवतरण हैं। और 'धरै अवतार रहै तिर्गुन–संयुक्ता' सभी उसके अवतार हैं, तो फिर सदगुरु में और सब में अंतर क्या है? जरा–सा अंतर है। बाकी जो अवतार हैं, वे त्रिगुण से संयुक्त हैं। वे बंधे हैं। वे त्रिगुण की रस्सी में बंधे हैं। तमस, रजस, सत्व– इन तीन गुणों में पकड़े गए हैं। इन तीन की रस्सी में बंधे हैं। गुण का एक अर्थ रस्सी भी होता है। त्रिगुण का अर्थ होता हैः जैसे रस्सी तीन धागों से बुन कर बनाई जाती, वैसे ही तीन धागों से बुना हुआ हमारा जीवन है।

संत रूप जब धरै रहै तिर्गुन से मुक्ता।।

इतना ही फर्क है– तुम रस्सी से बंधे हो, संत रस्सी से मुक्त है। तुम बंधे हो, संत मुक्त है। ईश्वर तो तुम भी हो, ईश्वर संत भी है, तुम सोए हो, वह जागा। तुम्हारे हाथों में जंजीर, उसके हाथ मुक्त। तुमने अपने चारों तरफ एक कारागृह बना लिया है– माया का, मोह का, ममता का, लोभ का, काम का, क्रोध का– उसने सारी दीवालें गिरा दी हैं। खुले आकाश के नीचे आ गया है।

बस एक सदगुरु को खोज लो, वही एकमात्र पवित्र स्थल है इस पृथ्वी पर। जहां सदगुरु है, वहां तीर्थ है। और सदगुरु के पास बैठ जाओ, अपनी व्यर्थ की बकवास को छोड़कर, तो तुम भी डूब जाओगे; तुम्हारी नौका भी उतर जाएगी अज्ञात के सागर में।

आज नए बादल फिर उमड़े, लगा कि तुमने मुझे पुकारा।
मुक्त करों से अमृत–गगरियां, ढुलका कर तुम मुस्काओगे।
मरे श्रांत–क्लांत तन–मन में, नई चेतना भर जाओगे।
नए नए मेघों के पट में, लगा कि तुमने मुझे संवारा।
घन निनाद से गीत तुम्हारे, गूंजेंगे मेरे कानों में।
लौट लौट कर जैसे आते, तुम्हीं प्यार के आलिंगनों में।
नए बादलों की उड़ान में, लगा कि मेरी खोज पसारा।

भूल गई मैं मरु की जलती दुपहर की चिर आकुल प्यासें।
चंदन शीतल सुमन–सुरभि सी लहराई पुरवा की सांसें।
लगा कि पत्थर चट्टानों ने मुझे बनाया निर्झर धारा।
हुआ क्या कि इतने नि तक जो रहा तड़पता सागर खारा।
नदियां कृश हो गईं, धरा का उजड़ गया था यौवन सारा।
अब तो लगा कि जल–थल सबकी तृप्ति हेतु ही मुझे निहारा।
आज नए बादल फिर उमड़े, लगा कि तुमने मुझे पुकारा।

सद्‌गुरु की पुकार में वही पुकारता है, वहीं बोलता है। सद्‌गुरु तो बांसुरी है। स्वर तो हमारे कानों में उस परमात्मा के माध्यम से आते हैं।'

हरि ओम् तत्सत्।